एक मील दूर एक बहुत बड़े जमींदार का गाँव है। पुराने जमाने में उनकी ऐसी स्थिति तो नहीं थी, पर इधर नये जमाने में उनकी नई तरक्की ने इतना हाथ बढ़ाया है कि उन्हीं की पहुँच से तिवारी को भी एक स्टेशन होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। छोटी लाइन की जितनी भी गाड़ियाँ आती हैं, वहाँ उनका रुकना जरूरी हो जाता है। स्टेशन कोई बहुत बड़ा नहीं है, ईंटों और पत्थरों से उठाकर दो कमरे तैयार कर दिए गये हैं। जिनमें एक टिकट घर और दूसरे में दो एक चपरासियों के रहने का स्थान है। थोड़ी दूर पर स्टेशन मास्टर का एक छोटा सा मकान है। स्टेशन की दूसरी ओर एक कच्ची सड़क का चौराहा है, जिस पर गाड़ी आने के वक्त दस-पाँच इक्केवाले गाँजे और तम्बाकू की बदबू से वातावरण को दूषित करते देखे जाते हैं।

२२ मई को पाँच बजे की गाड़ी से अजीत उसी स्टेशन पर उतरा। कुछ और लोग भी उतरे, लेकिन और स्टेशनों की भाँति नहीं। उनकी संख्या शायद पाँच या सात रही होगी। अजीत ने टिकट दिया। प्लेटफार्म से बाहर आते ही उसने एक इक्का करना चाहा। इक्केवाले आये हुए मुसाफिरों की ओर व्यग्रता पूर्वक देख रहे थे। कुछ मुसाफिर तो उनकी पहिचान ही के थे और कुछ बिलकुल ही अपरिचित। अजीत भी उन्हीं में से था। वह एक इक्केवाले के पास गया और इक्का तै करने की अभिलाषा से पूछा।

इक्केवालों में स्वाभाविक धूर्तता होती है। क्षण भर में मुसाफिरों के हृदय को ताड़ लेना उनके बाय हाथ का खेल है। अजीत को देखते ही इक्केवालों ने समझ लिया कि आप अभी पहली बार यहाँ आये हैं। इसलिये मनमाना दाम वसूल करना हमारे बस की बात है। अजीत के पूछने पर एक ने इतना ही रहम किया कि उसने केवल आठ आना अपना किराया बताया

अजीत पहले ही से जानता था कि पिवारी, स्टेशन से दो ही मील दूर बसा है और दो मील जाने के लिए इतना लंबा किराया। शहर से भी अधिक ! क्या यहाँ का किराया बढ़ा हुआ है? नहीं, नहीं मैं इतना नहीं दे सकता। उसने कहा—"और कम नहीं हो सकता है ; शहर में तो इतना लम्बा रास्ता दो ही आने में निपट जाता है।"

"लेकिन बाबूजी, यह देहात है। यहाँ शहर की-सी पक्की सड़क नहीं है।"

"फिर भी तुम देहातियों को इतना ठगने की चेष्टा न करनी चाहिए।"

"आप दूसरों से पूछ सकते हैं।"

अजीत दूसरे इक्के वाले के पास पहुंचा। उसने इससे भी अधिक लेने का दावा किया। उसने तो केवल आठ ही आने लेने को कहे थे, इसने पूरे रुपये की घौंस दी। अजीत ने बिना कुछ बातें किये ही तीसरे से पूछा। उसका भी किसी से कम न था। सभी का बस एक के बाद या दो चल रहा था। तात्पर्य यह कि सभी बढ़े-चढ़े थे। अजीत उस इक्के वाले के पास फिर आया, जिसने आठ आने कहे थे। परन्तु उसका भी टेम्प्रेचर बढ़ चुका था। अजीत के पूछने पर उसने कहा—

'अब तो बाबूजी, मैं चार रुपये लूँगा। इससे कम पर मैं जाने का नहीं।"

"क्यों ?"

"यह मेरी इच्छा। आपको चलना है तो आइये।"

"तुम्हें खाली लौटना पड़ेगा।"

"लेकिन आपको पिवारी पहुँचाने से मजबूर हूँ !"

अजीत को इक्के वाले की बात इतनी बुरी लगी कि अपने को वह रोक न सका। क्रोध से सारा शरीर जल उठा। परन्तु वह परदेश में था। अगर इलाहाबाद होता तो जरूर वह इक्के-वाले की अच्छी तरह से मरम्मत कर देता। उनकी धृष्टता का फल उन्हें मिल जाता। अजीत ने क्रोध को अन्दर ही पी लिया। उसने उन इक्के वालों से ज्यादा बातें न कीं। उनकी बातों को सुनकर उसे इतना क्रोध आगया था कि यदि वह और कुछ क्षण बातें करता तो जरूर लड़ाई हो जाती। वह लौट पड़ा। उसके मस्तिष्क में अनेक प्रकार की शंकाएँ उठने लगीं। आखिर इक्के वालों को हो क्या गया है ! तो क्या वे मुसाफिर को नहीं ले जाना चाहते ? यदि इस बात को मैं मान भी लूँ तो क्या वह केवल स्टेशन पर मुँह ही दिखाने के लिए आते हैं ? नहीं यह बात नहीं है। जरूर दाल में कालेपन का आभास है। शायद ये लोग बदमाश हैं, और इस तरह मुसाफिरों को ठगना इनका धंधा है। वह लौट कर स्टेशन मास्टर के पास आया। स्टेशन मास्टर गाड़ी को स्टेशन से रवाना कर पास ही लाइन पर टहल रहे थे। अजीत ने आगे बढ़कर उन्हें नमस्ते किया। उस क्षण अजीत गहरी बेबसी महसूस कर रहा था। जैसे एक बन्दी जेलखाने में बैठा यह कल्पना कर रहा हो कि यदि कहीं कोई राह मिल जाय तो अभी बाहर निकल जाऊँ। परन्तु आशा, निराशा की बेदी पर क्षण भर में ही पिस जाती है। अजीत की दशा भी इस समय ऐसी ही थी। उसके मुख से घबराहट टपक रही थी। स्टेशन मास्टर से उसने पूछा—"क्या यहाँ कोई ऐसी दूसरी सवारी नहीं मिलेगी जिससे मैं पिवारी जा सकूँ ?"

"इक्के वाले तो बाहर खड़े होंगे।"

"घबराओ नहीं बेटा, ये लोग हमारे रहते तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकते।"

मानों डूबते को तिनके का सहारा मिल गया हो। इतने-से ढाढ़स ने अजीत के टूटे हृदय पर हिम्मत की बाँध बँधा दी। परन्तु फिर भी उसका हृदय काँप रहा था।

"आज आप हमारे ही कमरे में रह जाना। सन्ध्या हो रही है, कौन दस घंटे की बात है। सुबह मैं इक्का करके ज़रूर पहुंचा दूंगा।"

"लेकिन आप.....!"

"मेरी फिकर न करो। ओ! समझा। आप मेरी पत्नी के विषय में कह रहे हैं। वह तो रूठ कर हमेशा के लिए मुझे अकेला छोड़ कर चली गई। केवल मैं ही इस कमरे को आबाद किये हूँ। आइए कमरे में आइए।"

"क्या मैं आपके परिचय से कुछ फायदा उठा सकता हूँ?"

"बेटा, मेरा नाम प्रेमनाथ है।"

"कितना सुन्दर नाम है।"

"और आपका!"

"मेरा नाम अजीतकुमार है।"

"आप क्या करते हैं?"

"अभी तो पढ़ रहा हूँ।"

"आपके पिता?"

"वे भी स्टेशन मास्टर हैं।"

"स्टेशन मास्टर हैं! किस स्टेशन के।"

"इलाहाबाद स्टेशन के।"

"इलाहाबाद स्टेशन के! क्या बाबू रघुवीरप्रसाद आपके पिता

उसी वक्त माधो आया और कहने लगा—

"बाबूजी, आपने अजीत को बातों ही में उलझा लिया। बाहर इक्का कब से इनकी बाट जोह रहा है। चलिए, रास्ता अति भयानक है। फिर कुछ ही समय बाद लू चलने लगेगी।"

"अच्छा तो मुझे चलना चाहिए। आपने मेरी जो रक्षा की इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। अच्छा नमस्ते!"

अजीत स्टेशन से बाहर आया। इक्का तैयार खड़ा था। पास ही माधो भी खड़ा था। सामान सभी इक्के पर लादा जा चुका था। केवल अजीत की देर थी। उसके आते ही इक्केवाले ने घोड़े की लगाम खींची और इक्का चल पड़ा।

"अरे माधो! तुम कहाँ चल रहे हो?"

"तुम्हें पहुंचाने।"

"यह तुम क्या कर रहे हो! तुमने जो मेरी इतनी सहायता की है क्या मैं इसे भूल सकता हूं? स्टेशन पर गाड़ियाँ आयेंगी तो सिग्नल से सूचना कौन देगा?"

"इसकी परवाह तुम कुछ न करो बेटा।"

"मेरी समझ में नहीं आता कि तुम मेरी सेवा क्यों इतनी तत्परता-पूर्वक कर रहे हो। तुम लौट जाओ माधो! अब मैं चला जाऊँगा। फिर तुम्हारी अवस्था देख कर मुझे यह शोभा नहीं देता कि मैं तुम्हें तकलीफ दूं।"

"नहीं बेटा, तुम जानते नहीं यह लुटेरा गाँव है। यहाँ के लोग इतने धूर्त हैं कि दिन-दोपहर मुसाफिर को लूट लेना हँसी-खेल समझते हैं।"

"अच्छा, यहाँ की दशा इतनी गिर चुकी है!"

"हाँ बेटा, अभी तुम नये आये हो इसलिए अभी यहाँ का वातावरण तुम्हारे लिए एक पहेली है। परन्तु कुछ ही दिनों में

तुम्हें मालूम हो जायगा कि यह लोग किस तरह अपना जीवन चला रहे हैं।"

"लेकिन माधो, एक बात जो कल से मेरे हृदय में खटक रही है उसे मैं तुमसे पूछना चाहता हूं।"

"क्या?"

"तुमने कहा 'माधो अभी वही माधो है' मैं इसका अर्थ कुछ न समझ सका।"

"बड़ी लम्बी-चौड़ी कहानी है बेटा। इसे सुनकर तुम क्या करोगे। केवल इतना ही समझ लो कि माधो तुम्हारी सेवा कर रहा है और तुम्हें प्यार भी करता है।"

'वह तो तुम्हारा कर्म ही स्नेह का भाजन बन रहा है; परन्तु फिर भी तुम मुझे क्योंकर जानते हो, यह तुम्हें जरूर बताना पड़ेगा।"

तुम्हें याद नहीं बेटा, उन दिनों तुम बहुत छोटे थे। इसलिए तुम मुझे अपनी स्मृतियों से भूल बैठे हो। उन दिनों जब इलाहाबाद स्टेशन का मैं एक कुली था, तुम मेरे घर आते जाते थे। कभी-कभी मेरे ही यहाँ तुम्हारा खाना भी हो जाया करता था। तुम्हारे पिता स्टेशन मास्टर बड़े ही नेक आदमी हैं। उन्होंने मेरी जो सहायता की है उसके लिए मैं उन्हें जिन्दगी भर नहीं भूल सकता।

"मुझे कुछ-कुछ याद आ रहा है।"

"जरूर याद आता होगा बेटा। तुम एक बार बीमार हो गये थे।" बीच ही में बात काट कर अजीत बोल उठा—"हाँ, जरूर तो क्या तुम वही माधो हो। जिसने मेरे लिए रात-दिन एक कर दिया था?"

"हाँ बेटा, मैं वही अभागा माधो हूँ। खैर पहिचान तो लिया अपने बूढ़े बाबा को।"

इक्का चला जा रहा था। रास्ता बहुत ही खराब था। कहीं-खड्ड तो कहीं गढ़े। सारी हड्डियाँ इन हचकोलों से हिल चुकी थीं और जिसकी वजह से कुछ उनमें कमजोरी भी आ गई थी।

'नर्सें तो पिकेटिंग करने लगीं। क्या इक्का चलाते हो भाई!"

"बाबू साहब, रास्ते की ओर ध्यान दीजिए। यदि मेरा कुसूर हो तो...।"

"तुम्हारा कहना ठीक है। रास्ते में इतने हचके हैं। खैर अब आया हूँ तो सभी तरह की तकलीफ सहनी पड़ेगी। माधो तुम्हें काफी तकलीफ हुई होगी। तुमने इलाहाबाद क्यों छोड़ दिया? क्या वहाँ, यहाँ का सा सुख नहीं है?"

"हाँ बेटा, मेरे लिए इलाहाबाद में रहना मौत को पैदा करना है।"

"ऐसा क्यों माधो?"

"क्या करोगे बेटा जान कर। बीती हुई बातें कभी सच मानी ही नहीं जा सकतीं।"

"सो किस तरह?"

'यह भी मैं नहीं कह सकता। परन्तु इतना अवश्य है कि इस घटना को सुनकर कभी कोई इस पर विश्वास नहीं कर सकता।"

"कैसी घटना माधो?"

"कुछ नहीं बेटा, कुछ नहीं।" घबरा कर माधो ने कहा

"माधो, तुम मुझसे कहने कहने किसी घटना को छिपाना चाहते हो।?"

"नहीं मैं कुछ नहीं छिपा रहा हूँ।

"नहीं तुम्हें बताना पड़ेगा

"क्या?"

"यह तो मैं नहीं जानता, परन्तु इतना आभास अवश्य मुझे मिल

आई जिस कारण वह और भी क्रोध से काँप उठीं। उनकी आँखें लाल हो गईं। यह दशा देख मैंने अपने जीवन की आशा बिलकुल ही छोड़ दी। परन्तु मेरे में सामर्थ्य थी, केवल इतनी कि मैं कुछ बातों से जीवन-संघर्ष कर सका हूँ। क्रोध तो था ही फिर शब्द क्यों कोमल हो सकते थे? माथो मैं तुम्हें तरह देते देते हार गई। खैर, लो अपनी निर्दोषिता का फल!' इतना कह वह बड़ी जोरों से चिल्ला उठी। 'दौड़ो दौड़ो! माथो मेरे साथ अनुचित व्यवहार करने पर तुला हुआ है!' उनके कई बार चिल्लाने पर इधर उधर से लोग घड़घड़ाते हुए कमरे में घुस आये। मुझे स्वप्न में भी यह विश्वास नहीं था कि लोगों का शक मुझपर होगा। बेटा, संसार सच्चे का नहीं। जिसने सत्यता को अपनाया वह गिरा। झूठों की दुनिया है। बस यही दशा मेरी भी हुई। मैं सत्यता का मान समझता था और इसी हेतु मैं वहाँ खड़ा रहा। लोग उस पापिनी की बातें सुन क्रोध से लाल हो गए। मुझे देखते ही उनकी भृकुटि तन गई। बस क्या था एक बड़ी-सी भीड़ बँगले में एकत्र हो गई थी। मुझ पर टूट पड़ी। मेरे ऊपर चप्पल, तमाचे, जूते सभी पड़ रहे थे। कुछ समय तक तो मैं मार सहता हुआ अपनी निर्दोषिता प्रगट करता रहा। 'भाई, मुझे मत मारो, मैं निर्दोष हूं।' परन्तु मारने वालों ने किसी तरह अपने काम में ढिलाई नहीं की। वे मेरी बातों की परवाह न कर बस मारने ही की धुन में थे। मैं सभी तरह के वारों को अपने सर पर ले रहा था कि अचानक एक लाठी का वार मेरे सर पर हुआ। मैं जमीन पर गिर पड़ा। फिर मुझे बिलकुल होश न रहा कि उन लोगों ने मेरे साथ कैसा व्यवहार किया।"

"ओर! कितनी भयानक घटना है।" अजीत बोल उठा।

"मैं जब होश में आया मेरे सामने भीड़ लगी हुई थी। पास

ही वकील साहब हंटर लिये खड़े थे। उनकी ओर देखने से साफ़ मालूम होता था कि उन्होंने भी मेरा सम्मान इस हंटर द्वारा किया है। जितनी ताकत थी उतनी देर उन्होंने हंटर चलाया है, परन्तु अब खुद ही थक कर क्रोध को शान्त करने के लिये हट गये हैं। अब उनकी आँखें क्रोध से जली जा रही थीं। वे चिल्लाकर कह रहे थे, मैं इसे पुलिस में दूँगा। लोगों की आँखें मुझी पर लगी हुई थीं। मैं जमीन पर पड़ा था। मेरा सारा शरीर जर्जरित हो गया था। मैं उठने से बिलकुल असमर्थ हो गया था। सिर में से बराबर खून निकल रहा था। ऐसी मेरी दशा थी। परन्तु फिर भी उस वक्त किसी के हृदय में दया न थी। वे केवल मेरी ओर देख ही रहे थे। उनके नेत्रों से घृणा टपक रही थी। मैंने पानी के लिए लोगों की ओर इशारा किया। लेकिन पानी के स्थान मुझे लाठियाँ दिखाई गईं। एक तो चोटों के दर्द से मेरी दशा शोचनीय हो गई थी, दूसरे प्यास ने मुझे और भी मजबूर कर दिया। शिथिलता के कारण मेरी सारी नसें बेकार हो चुकी थीं और मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मैं कुछ ही क्षणों का मेहमान हूं। मैं जमीन पर पड़ा पड़ा यही कल्पना कर रहा था कि स्त्री जाति कितनी भयानक है। कितनी जड़ता उसमें होती है। नीच हृदय! यदि मैंने तेरी बातों का समर्थन कर दिया होता तो क्या मुझे ऐसा दंड भुगतना पड़ता? कभी नहीं। मेरा और सम्मान होता। यह मुझे कितने अरमानों से प्यार करती। बेटा, मनुष्य से छिप सकती है परन्तु ईश्वर से तो नहीं छिप सकती। वह हर जगह और हरएक को देखता है। उनके किये हुए का उचित फल देता है। इन लोगों ने ईश्वर को खिलवाड़ बना रक्खा है। थोड़े से पागलपन पर वह अपनी मानवता को मिटाने पर कितना तुली थी। कुछ समय पश्चात मैं इतना कमजोर हो गया कि आँखें भी बन्द हो गईं। मेरी बातों पर किसी को विश्वास नहीं था।

करीब एक घंटे तक यही दशा रही। इसके बाद भीड़ घटना शुरू हुई। लोग अपने-अपने घर जाने लगे। परन्तु उनके कहे वाक्य मेरे हृदय पर कील का काम कर रहे थे।"

"क्या कह रहे थे वे बेवकूफ?"

"कह रहे थे—इतने बड़े हो गए माधो, शर्म नहीं आती। चुल्लू भर पानी में डूब मरते, न मुँह देखते और न दिखाते। जिस मालिक का खाते हो उसी की स्त्री पर दाँत गड़ाते हो। नीच, पापी तेरा तो मुँह देखना पाप है। ठीक है, इसको ऐसा ही चाहिए था। मैं यह सभी बातें चुपचाप सुन रहा था। परन्तु मन ही मन रो रहा था। मैं इनका खाता हूँ—शायद बिना मेहनत किये ही मुझे रक्खे हुए हैं। फिर मैं निर्दोष था और उस पर यह बातें। तुम्हीं सोचो बेटा।"

माधो ने अभी अपने जीवन की कहानी इतनी ही सुनाई थी कि उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े। परन्तु उस १५ वर्ष की स्मृति के आँसुओं को उसने रोका और निकले हुए टुकड़ों को फटे दुपट्टे से पोंछ लिया।

"माधो, क्यों रोते हो! तुमने मार जरूर खाई और अहित भी हुआ। परन्तु फिर भी तुम्हें शान्ति रखनी चाहिए, क्योंकि इसमें उनकी भी तो लाज गई।"

"उनकी लाज क्यों कर गई?"

"दुनियाँ ने तो यह जान लिया कि तुमने एक दिन उनकी पत्नी के साथ अनुचित व्यवहार करने की ठानी थी। मानता हूं तुमने ऐसा नहीं किया, परन्तु दुनिया को विश्वास है।"

"दुनिया को विश्वास हो या न हो बेटा, लेकिन मैं अब स्त्री जाति से घृणा करने लगा हूँ। स्त्री ही मनुष्य को गिरा सकती है।

हँसते को रुला सकती है।"

"ठीक है ऐसा होना भी चाहिए।"

कहानी को पूरी करने के लिए माधो ने कहना शुरू किया—

"केवल वकील साहब का ही नहीं बल्कि मैं उस वातावरण के सभी सज्जनों का दुश्मन हो गया। सभी घृणा करने लगे। मैं अब नहीं चाहता था कि मैं वहां रहूँ। मैंने सोचा कि कह दूँ कि वे मुझे जेल भिजवा दें। परन्तु मेरे में ताकत तो थी नहीं कि मैं कुछ कहता। खैर, मुझ पर इतनी दया की गई कि उन लोगों ने मुझे इतना ही कहकर छोड़ दिया कि पा लिया अपने किये का फल। अब इसे पुलिस में देने से अपने अहित का डर है। सभी लोग चले गये। मैं ही अकेला सड़क पर पड़ा था। कितने समय तक पड़ा रहा यह मुझे बिल्कुल ही याद नहीं, परन्तु इतना अवश्य याद है कि उस समय मेरी रक्षा ईश्वर ने की थी।"

"वह किस तरह माधो ?"

मेरे में इतनी सामर्थ्य आगई कि मैं उठने लायक होगया। मैं उठा और यह सोचकर स्टेशन की ओर चल पड़ा कि स्टेशन पर पहुँच कर किसी गाड़ी में बैठ जाऊँगा और जिधर भाग्य ले जायगा उधर ही चला जाऊँगा। घाव की पीड़ा को सहन करता मैं सड़क पर चला जारहा था। रक्त उसी तरह मेरे सिर से स्राव हो रहा था। मैं स्टेशन पर आया, गाड़ी प्लेटफार्म पर लगी थी। मैंने उस पर चढ़ने की कोशिश की। परन्तु उसके बाद हुआ मुझे पता नहीं।"

"क्या मतलब ? मैं तुम्हारी बातें समझ न सका।"

"शायद उस समय मैं बेहोश होगया था। जब मुझे होश आया मैं तुम्हारे पिता की गोद में था। पहले तो उनकी शक्ल घबराई-सी थी परन्तु मुझे होश में जान शान्ति से

तीसरा परिच्छेद

जल्दी सोने की बजह से अजीत की निद्रा बहुत सवेरे ही टूटी। उठकर वह बाहर आया। भगवान् भास्कर अभी ऊषा के आँचल में छिपे धीरे-धीरे अपनी प्रखर छटा को प्रस्फुटित कर रहे थे। परन्तु पक्षी, उन्हें क्या! वे तो यही समझे बैठे थे कि कब तक छिपे रहेंगे, आवेंगे तो अवश्य ही। फिर वे गायन से क्यों चूकें। कोकिला ने आम्र-मंजरी के बीच धीमे स्वर में पंचम का सुर अलापा। मीठी स्वर-लहरी प्रचण्ड वायु में विलीन हो-हो कर हूक-सी पैदा करने लगी।

अजीत एक ओर खड़ा हो प्रकृतिकी सुन्दरता निरख रहा था। उसके लिए यह नवीन चित्र था। पास ही घने जंगल के बीच से एक भौंरों की मधुर तान कभी-कभी सुनाई पड़ती थी। उसमें कितना विरह का सुर भरा था। केवल विरही इसे बता सकते हैं। वन-उपवन को देख अजीत का हृदय एकदम उछल पड़ा। उसका भी मस्तिष्क कल्पना भेरी से बज उठा।

कैसा सुन्दर दृश्य है छप्परों पर कैसी लौकी, कोहड़े की लताएँ एक दूसरे से लिपटी स्वागत की राह देख रही हैं। छोटे-छोटे फूसफास के छप्पर कितने सुन्दर—महलों से अच्छे नीरव स्थान, परन्तु कितना मधुर! काश! उन कवियों का हृदय इधर होता जो केवल महलों की ही आबोहवा में पले हैं। जिन्होंने केवल साक़ी, शराब को ही अपना लक्ष्य बना रक्खा है, भूलकर भी इधर निकल आते तो अवश्य ही ऐसे जीवन को पा अमर हुए बिना न रहते।

अचानक ही उसको मानसिक पीड़ा ने धर दबाया।

किसकी लड़की है ? किसका सुन्दर हँसमुख चेहरा है। सुबह का कमल भी शायद उसके सम्मुख कुछ नहीं। घुँघराले बाल, नागिन-सी काली लटें, उस पर वह शुभ्र ललाट पर छोटा-सा सुन्दर कुल और ही गजब कर रहा था। मुझसे पूछा था—आप किसको खोज रहे हैं ?

ओफ, मैं कुछ न बोल सका और बोलता क्या मेरा तो सिर ही शर्म से झुका जा रहा था। फिर उसकी भी तो यही दशा थी। मेरे शब्द भी तो रूठकर उस क्षण न जाने किस कोने में जा छिपे थे। बिल्कुल बोलती ही बन्द होगई थी।

काश ! मैं कह सकता, क्या आप बता सकती हैं यहाँ किस स्थान को प्रेमनगर कहते हैं। मैंने बहुत बड़ी बेवकूफी की। कुछ पूछा नहीं।

तो क्या उसी बंगले में रहती है ? यदि रहती है तो जरूर ही एक बार कोशिश करूँगा। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे याद हो आया कि वह आया थोड़े ही दिनों के लिए है। उसने अपने हृदय को बहुत कोसा। यदि उसने मुझसे दो बातें की हैं तो क्या यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं उसका दूसरा मतलब लगाऊँ। यह बात नहीं। हाँ, यह बात तो अवश्य ही माननीय है कि उसके कंठ में मादकता थी। परन्तु वह भी नवयौवना होने ही से.....

वह नवयौवना है। सुन्दरता के साथ गुण भी हैं फिर यह तो ईश्वर की देन है कि यदि मादकता न हो तो मोहकता कहाँ से आवे। यह मेरी भूल है। भूल ही नहीं बल्कि भ्रम है। किसी युवती पर तृष्णा का प्रकाश करना पुरुष की कितनी भारी भूल है।

उसने स्नान कर खाना खाया, और खा चुकने के बाद कमरे में खाट बिछा उपन्यास पढ़ना शुरू किया। उसने अपनी आत्मा को

धोखा था, परन्तु फिर भी वह सँभाल न सका। उनका कोमल हृदय प्रेमतीर्थ की ओर बहकर ही रहा। प्रेम भी बड़ा भयानक रोग है। जिसको इसने थामा वह बर्बाद होकर रहा है। उसके जीवन की इतिश्री उसी दिन हो जाती है जब उसका हृदय किसी के द्वारा छीन लिया जाता है। अजीत को न जाने क्यों वह युवती रह-रह कर याद आ रही थी। कल्पना के साथ ही प्रेम का स्थान बढ़ता है, अनुभव के साथ ही इसकी बुनियाद पक्की होती है। अजीत की बहन शान्ति गाँव के स्कूल को चली गई थी। जीजाजी कुछ चरसी दिमाग़ के थे फिर उनका शरीर भी वैसा ही था और कुछ पीते भी थे। इसलिए चरस की खोज में इधर-उधर कहीं गाँव में गये हुए थे। अजीत अकेला ही कमरे में था। उसके हाथ में उपन्यास था परन्तु उसका हृदय था उस युवती के पास। वह पढ़ रहा था परन्तु ध्यान था उस युवती की चंचलता पर। पढ़ते-पढ़ते उसका मन ऊब-सा गया। वह बाहर आकर टहलने लगा। आज उसका दिन काटे न कटा। करीब दो घन्टे के बाद जीजाजी आये।

अजीत ने पूछा—"कहाँ गये थे जीजाजी? एक तो हमारा पहला मौका दूसरे आप मुझे अकेले छोड़कर चले जाते हैं।"

"घर की पतोहू बनकर थोड़े ही आये हो जो तुम्हारी रखवाली की जाय!"

"अकेले से तो बाज आया।"

"तुम्हारी बहन अभी नहीं आई क्या?"

"अभी कहाँ आई।"

"अच्छा चलो फिर घूम आयें।"

"कहाँ घूमने चलें, शहर तो है पूरा।"

"खैर आओ भी तो सही।" इतना कह अजीत का हाथ पकड़

कोसा था, परन्तु फिर भी वह सँभाल न सका। उनका कोमल हृदय प्रेमतीर्थ की ओर बहकर ही रहा। प्रेम भी बड़ा भयानक रोग है। जिसको इसने थामा वह बर्बाद होकर रहा है। उसके जीवन की इतिश्री उसी दिन हो जाती है जब उसका हृदय किसी के द्वारा छीन लिया जाता है। अजीत को न जाने क्यों वह युवती रह-रह कर याद आ रही थी। कल्पना के साथ ही प्रेम का स्थान बढ़ता है, अनुभव के साथ ही इसकी बुनियाद पक्की होती है। अजीत की बहन शान्ति गाँव के स्कूल को चली गई थी। जीजाजी कुछ चरसी दिमाग़ के थे फिर उनका शरीर भी वैसा ही था और कुछ पीते भी थे। इसलिए चरस की खोज में इधर-उधर कहीं गाँव में गये हुए थे। अजीत अकेला ही कमरे में था। उसके हाथ में उपन्यास था परन्तु उसका हृदय था उस युवती के पास। वह पढ़ रहा था परन्तु ध्यान था उस युवती की चंचलता पर। पढ़ते-पढ़ते उसका मन ऊब-सा गया। वह बाहर आकर टहलने लगा। आज उसका दिन काटे न कटा। करीब दो घन्टे के बाद जीजाजी आये।

अजीत ने पूछा—"कहाँ गये थे जीजाजी? एक तो हमारा पहला मौका दूसरे आप मुझे अकेले छोड़कर चले जाते हैं।"

"घर की पतोहू बनकर थोड़े ही आये हो जो तुम्हारी रखवाली की जाय!"

"अकेले से तो बाज आया।"

"तुम्हारी बहन अभी नहीं आई क्या?"

"अभी कहाँ आई।"

"अच्छा चलो फिर घूम आयें।"

"कहाँ घूमने चलें, शहर तो है पूरा।"

"खैर आओ भी तो सही।" इतना कह अजीत का हाथ पकड़

कर बाहर आये। अजीत ज्योंही बाहर आया और जैसे ही उसकी दृष्टि फाटक पर पड़ी जहाँ पर खड़े होकर उस युवती से बातें की थीं। उसका हृदय धक् से कर उठा, रोमांच के साथ उसका सारा शरीर काँप गया। उसके मनमें आया कि जीजाजी से इस संबंध की आलोचना करे, परन्तु हिम्मत न पड़ी। दूसरे क्षण उसकी कल्पना रुक गई। कहीं जीजाजी को शक न हो जाय, फिर मेरे पूछने का सम्बन्ध उस युवती से है। एक तो मैं वैसे ही थोड़े दिनों के लिए आया हूं, दूसरे यदि मालूम हो गया तो फिर मेरा रहना मुश्किल हो जायगा। वह चुप रहा परन्तु फिर-फिर कर देखता जा रहा था। न जाने कैसा आकर्षण उसे बार-बार प्रेरित कर रहा था कि वह उस स्थान को छोड़कर जाये ही नहीं। पल-पल में उसे शंका होने लगी। शायद वह अपने बाग ही में तो नहीं है अजीत उसका परिचय जानना चाहता था। परन्तु संकोच के सम्मुख विवश था। खैर, वह किसी तरह जीजाजी के साथ गाँव में पहुँचा, अजीत के जीजाजी का नाम था इन्द्रभूषण। यहाँ आये इन्हें साल के करीब हो चुका था। गाँव के काफी लोगों से परिचय हो गया था फिर शान्ति उसी गाँव की लड़कियों को पढ़ाती थी। इसलिए और आपत्तियाँ भी दूर हो गई थीं। अजीत इन्द्र के साथ एक व्यक्ति के पास पहुँचे। ये भी चरसी थे। इन्द्र को देखते ही उन्होंने कहा—

"कहो भाई इन्द्र, लाओ फिर भरा जाय।"

"है तो लेकिन पहले निकालो तो सही।"

"क्या निकालूँ साथी ?"

"चालाकी तो न करोगे।"

अजीत को यह अच्छा न लगा। वह वहाँ से यह कह कर खिसका कि चरसी को चरस के पास ही रहना अच्छा है, मुझसे

तो यह नहीं होगा।" इन्द्र चुप रहा परन्तु अजीत को चलते देख इन्द्र ने कहा—'ठहरो अजीत, चल रहे हैं। बस यह खतम ही हुआ चाहती है।"

"खतम हो या भाड़ में जाय, मैं तो चला।"

"यह कौन है इन्द्र?" गंगा ने पूछा।

"हमारे साले साहब हैं।"

"क्या करते हैं।"

"पढ़ते हैं।"

"किस क्लास में हैं?"

"इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा में बैठेंगे।"

"अच्छा. तब तो बड़ी अच्छी बात है।"

इतना कह चिलम उठा चरस का दम लगाना शुरू किया। अजीत यहाँ से हटकर फिर वहीं आकर खड़ा हुआ जहाँ पर उसने उस युवती से बातें की थीं। उस समय वह सुन्दर कपड़े पहिने था। उसके हृदय में रह-रहकर यही उल्लास उठ रहा था कि वह आ जाती तो मैं उससे बातें कर लेता। उसकी अभिलाषा पूरी हुई। उस युवती ने अजीत को देख लिया। वह फिर फाटक की ओर आई। अजीत खुशी से उछल पड़ा परन्तु दूसरे क्षण ही वह घबरा उठा। यदि पूछेगी तो क्या जवाब दूंगा? अब यहाँ, क्यों आकर खड़ा हुआ हूँ? क्या कहूंगा? कुछ नहीं। न जाने वह क्या समझ ले। क्या करूँ? क्या यहाँ से हट जाऊँ? यह भी तो ठीक नहीं शायद तभी तो आ रही है।"

इस उलझन में अजीत कुछ न कर सका। उसका हृदय धड़क रहा था। उसका सारा शरीर शिथिल हो गया था उसने फाटक की ओर से मुँह फेर लिया और दूसरी तरफ देखने लगा। परन्तु कटाक्ष क्षण क्षण पर सूचित कर रहा था कि वह समीप होती जा

रही है। वह समीप आ गई और बोली—"कहिये, क्या आपको घर नहीं मिला ?"

प्रश्न बड़ा ही बेढब था, अजीत चुप रहा। उसके मुँह से बोली न निकली। कोशिश करने पर भी वह असफल रहा। उस क्षण मानो शब्द उससे रूठकर कहीं चले गये थे, पाँव धरना दे रहे थे। घटना अनजान में घटती है जान में नहीं। वह समीप ही खड़ी थी जिसको वह चाहता था। कुछ देर उत्तर की प्रतीक्षा कर वह फिर बोली—"आप बोलते क्यों नहीं ? क्या आप मुझसे बुरा मान गये ? मैं सबेरे के शब्द के लिए क्षमा चाहती हूं।"

"अरे आप क्या कह रही हैं, मैं क्यों बुरा मानने लगा। इसमें क्षमा की कौन बात है।"

"क्या मैं पूछ सकती हूँ आप ठहरे कहाँ हैं।"

"मैं तो यहीं ठहरा हूं अपनी बहिन के यहाँ।"

"तो क्या आपकी बहिन यहाँ रहती हैं ?"

"हाँ मैं उन्हीं से मिलने के लिए इलाबाद से आया हूं।"

"कहाँ रहती हैं वह ?"

"वह सामने वाला घर।" अजीत ने सामने की ओर दिखाया।

'वहाँ तो स्कूल की हेड मिस्ट्रेस साहबा रहती हैं।'

'हाँ वही मेरी बहिन हैं।

'तो क्या शान्ति देवी आपकी बहिन हैं ? आइये, बँगले में । वह तो हमारे यहाँ कभी-कभी आती हैं। माताजी उन्हें चाहती हैं ! आपको देखकर वह और भी खुश होंगी।"

अजीत असमंजस में पड़ गया। चलूँ कि न चलूँ। शायद यह ऊपरी दिखावा हो। क्या पता मेरा आना शायद क्रोध का कारण हो। मैं दो बार आकर इनके फाटक पर खड़ा हुआ हूँ।

लोग हर प्रकार की शंका कर सकते हैं। फिर मैं नया आदमी यहाँ के रहन-सहन को क्या जानूँ। अभी कल ही तो आया हूँ। न जाने अन्दर ले जाकर क्या करे, माता के पास ले जाना शायद बहाना हो। वह अभी यह सोच ही रहा था वह फिर बोल उठी— "आप क्या सोच रहे हैं?"

"कुछ नहीं मैं अपनी कमजोरियों पर घबरा रहा हूं?"

"कैसी कमजोरी?"

"क्या मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछ सकता हूँ।"

"पूछिये आप क्या पूछना चाहते हैं?"

"क्या मैं आपके शुभ नाम का परिचय पा सकता हूँ?"

"मेरा नाम चारुशीला है।"

"आप यहाँ कब से रहती हैं?"

'आप तो न जाने कैसे प्रश्न करते हैं। मेरे माता-पिता तो हमेशा से यहाँ रहते चले आ रहे हैं। खैर चलिये अन्दर चलें। वहीं जो कुछ पूछना हो, पूछना मैं सब कुछ बता दूँगी।" इतना कह अजीत का हाथ पकड़ वह बँगले की ओर ले चली। अजीत बेबस हो गया। उसका हृदय धड़क रहा था। कुछ दूर चलने के बाद वह फिर ठमका और कहने लगा—"लेकिन आप मुझे वहाँ ले जाकर क्या करेंगी?"

"आप डरते क्यों हैं, यह मैं नहीं समझ पा रही हूँ।"

"पहले मेरा हाथ तो छोड़ दीजिये।"

इन शब्दों को सुनते ही चारु चौंक पड़ी और घबराकर हाथ छोड़ अलग खड़ी हो गई। शर्म से उसका सिर नीचे हो गया। वह कुछ न बोली। यह देखकर अजीत समझ गया परन्तु कुछ बोला नहीं; उसे विश्वास हो गया। चारुशीला जो कह रही थी वह सच्चे दिल से कह रही थी। उस क्षण उसमें मस्ती थी तभी तो

चौथा परिच्छेद

आखिर देहात तो देहात ही है। वहाँ शहर का सा आराम कहाँ। दिन चैन न रात चैन। कड़ी गर्मी ऊपर से, लू से सारा शरीर झुलसा जाता है। छोटे-छोटे फूस के बने छप्पर बेचारे कहाँ तक लू से बचा सकते हैं। उनमें इतनी जान कहाँ कि वे भगवान् भास्कर को चुनौती दे सकें। फिर वायु इतनी प्रचण्ड कि फूस-फास को ठीक से उनके स्थान पर नहीं रहने देती। इतनी तेजी दिखाती है कि बस अब छप्पर उड़ा ही चाहता है। अजीत की बहिन स्कूल की हेड मिस्ट्रेस है। उसका भी घर इन्हीं छप्परों का है। यदि कोई पक्का महल की भाँति घर है तो वह चारुशीला का। तो क्या वहाँ अजीत को स्थान मिल सकता है? शायद... परन्तु अभी नहीं। अभी तो उसे उसी झोपड़ी में रहना होगा।

अजीत एक खाट पर पड़ा उपन्यास पढ़ रहा था। उसने घर के दरवाजे को अच्छी तरह बन्द कर रखा था। परन्तु वह भी इस लू के झकोरों के सम्मुख विवश थे। कभी-कभी ऐसा हृदय कँपा देने वाली वायु घर में प्रवेश करती थी कि कलेजा दहल उठता था। शरीर में लगकर ऐसी बिजली पैदा करती थी कि रस अब इतिश्री होने में थोड़ा ही समय है। अजीत कमरे में अकेला था परन्तु फिर भी उसके पास चारु थी वह उसी से बातें कर रहा था। उसे लू की परवाह नहीं थी। लू से कहीं भयानक ज्वाला उसके हृदय में थी, तूफान से भयानक डर उसके मस्तिष्क में था। चारु ने उसका हाथ पकड़ा था। क्यों? वह कुछ न समझ सका। फिर वह पीछे क्यों हटी यह और भी उलझन की बात थी।...तो क्या यह सत्य हो सकता है? हवा

नहीं, बल्कि चलती फिरती नजरों से। अजीत उतावला हो उठा। वह बोला—"दीदी कब से शुरू होगा ?"

उस क्षण चारु गम्भीर थी। अजीत के प्रश्न को काटने के लिए उसने शान्ति से पूछा—"आप कौन हैं, कब आये ?"

"यह मेरे भाई हैं।"

"आपका नाम ?"

"अजीत है और इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा में बैठ रहे हैं।"

चारु ने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया। वह अजीत को ही अपना पति मान चुकी थी। बी०ए० को सुन उसका हृदय बासों उछल पड़ा। कहीं शान्ति ताड़ न ले इसलिए मामले को छिपाकर कहने लगी—"आप कब आये मैंने तो आज इन्हें पहली बार देखा है।" अजीत घबरा उठा और सोचने लगा मुझे आज पहली बार देखा है क्या मतलब। कैसी बन रही है अभी कल कैसी बातें हो रही थीं और आज....चारु कितनी चालाक है कहीं बहिन को मालूम न हो जाय। आँखों को देखो जिनमें कल मधु था उन्हीं में आज चचलता है। हँसी तो रुकती ही नहीं। अजीत भी अजान की तरह बोल उठा—"यह कौन हैं दीदी ?"

"हमारे डिप्टी साहब की पुत्री चारुशीला।"

"इन्हीं का नाम चारुशीला है, आप ही का नाच होगा ?"

चारु ने एक भावपूर्ण दृष्टि अजीत पर डाली और कहने लगी—"हाँ, होगा तो, लेकिन . . . ."

"मेरी भी अभिलाषा आपके नृत्य को देखने की होरही है।"

"परन्तु वह तो केवल महिलाओं ही के लिए होगा।"

"लेकिन मुझे दावत मिल चुकी है।"

चारुशीला ने इस बात पर ध्यान न देकर शान्ति से पूछा—"मेरा कार्य-क्रम कब रक्खा गया है ?"

सभी अपने घरों में सोती होंगी।"

"तो फिर किस तरह होगा ?"

"मैं बताऊँ, अजीत को मेरे साथ भेज दीजिये। मैं फूल-पत्ती कमरा सब कुछ सजा लूंगी। कोई सहेली नहीं है फिर कैसे होगा।

"हाँ अजीत, तुम चारु के साथ चले जाओ।"

"मैं नहीं जा सकता दीदी, धूप कड़ी है।"

"जाओ अजीत बेइज्जती हो जायगी।"

अजीत भुनभुनाता हुआ उठा। चारु मन ही मन हँस रही थी। अजीत उसके साथ जायगा तो जो मन में आवेगा वह पूछ सकती है। कोई पूछने वाला नहीं और कोई पूछ कर ही क्या कर सकता है। चारु अजीत को लेकर बाहर आई। अजीत उसके साथ चला जा रहा था परन्तु चारु ? वह भला कब चुप रह सकती है।

"आप मुझ पर रुष्ट हो गये हैं, क्यों ?"

"मैं बेवकूफ हूँ ?"

"और नहीं तो क्या ! आपको क्या आता है।" चारु मुसकराई।

"देखो यह मजाक मुझे पसन्द नहीं चारु ! तुम जहाँ देखो वहीं मेरा मजाक उड़ाती हो।"

"और आप चुप रहते हैं, बड़े भोले हैं न आप।"

"कहीं बहिन....." अजीत का गला एकाएक रुक गया। भी यहाँ तक नहीं पहुँचा था : फिर चारु से भी वह डरता र डरता था उसके पिता से। कहीं मेरी कल्पना गलत हो। अपने दर्द को छुपाये ही रखना चाहता था खोल कर क्या रेगा शायद चारु इनकार कर दे। अजीत को चुप होते देख चारु ने कहा—"आप चुप क्यों हो गये ?"

"यह मैं नहीं कह सकता।" वह अपने मुँह से अपने प्रेम की

"इसी लिए तो मैं यहाँ आई हूँ, काँटों पर अठखेलियाँ कर लूँ।"

"काँटों पर अठखेलियाँ कर लूँ! क्या मतलब? क्या मधुप इतने मूर्ख होते हैं?"

चारु ने कुछ न कहा और आगे बढ़ गई। अजीत भी पीछे-पीछे चलने लगा। दोनों बाग में पहुँचे। फूल तोड़ना शुरू किया। अचानक चारु के पाँव में काँटा लग गया। वह चिल्ला उठी—"अजीत।" अजीत दौड़ कर चारु के पास पहुँचा। चारु के हाथ से फूलों का गुच्छा छूटकर गिर पड़ा। चारु ने कलियाँ जो तोड़ी थीं पास की पड़ी याद दिला रही थीं कि यह केवल [illegible] है फिर कोई पूछने वाला नहीं। कली विकसित तो [illegible] थी ...कुछ भी हो वह यौवन तो [illegible] [illegible] था। क्षण भर में पृथ्वी पर आता [illegible] देखा [illegible] उसके आशा भरे नयन [illegible] [illegible] क्या वह भी कली है और उसके साथ भी [illegible] किया जायगा। परन्तु अजीत चारु को संशय में [illegible] वाला नहीं था और उसके इन निराशामय [illegible] मिटा देना चाहता था। ज्योंही उसने कोशिश की वैसे [illegible] की [illegible] दी। चारु बोल उठी—"माँ आ रही है देखो वह [illegible] माँ ने बँगले में चारु को [illegible] था [illegible] था एक युवक का। चारु नवयौवना [illegible] उस पर तरह-तरह की कल्पना कर [illegible] चाहे वह स्वच्छ और निर्मल क्यों न हो। इसीलिए पुत्री [illegible] रखना माता-पिता अपना धर्म समझते थे। माँ पास गई परन्तु किसी भी तरह युवक को इधर-उधर खिसकते न देखा वह अब घबरा उठी और पूछने लगी—'चारु, यह कौन है?" अजीत ने उठकर नमस्ते किया। चारु दौड़कर माता के गले से लिपट गई और कहने लगी—"माँ, यह शान्ति देवी के भाई हैं,

पाँचवाँ परिच्छेद

कमरा सजाया गया। चारों ओर झाड़ फानूस ही नजर आते थे। बाहर एक छोटा-सा गेट बनाया गया था, उसमें बेल, पत्ते तथा कहीं-कहीं फूल लटकते दिखलाई देते थे। कितना सुन्दर! अजीत का हृदय एक बार उछल पड़ा। यह सब चारु ने ही किया था। यह सब उसकी उमंग का उदाहरण था अभी जलसा शुरू होने में काफी समय था। अजीत ने सोचा, चारुशीला का नृत्य पहले तो होगा नहीं, बाद में होगा, इसलिए अभी से चलकर क्या करूँगा।

आशा और अभिलाषा कितनी बड़ी दौलत है, कितनी ठोस इसकी बुनियाद है, परन्तु वह भी क्षण भर में ढह जाने वाली। मानव को प्रलोभन में रखना उसका नित्य का काम है। हृदयहीन को एक बार हृदय वाला बना देती है—कल्पना से हृदय भर देती है। कितना सुन्दर स्थान है इसका। अजीत चारु की आशा में खड़ा राह देख रहा था। वह चारु से बात करना चाहता था और जानना चाहता था कि वह कौन-सा नृत्य करेगी। आशा, आशा ही रह गई, अभिलाषा असहनीय हो उठी; वह लौट पड़ा। चारु अभी आई नहीं, तो क्या वह नहीं आयगी। फिर उसका कार्यक्रम क्योंकर होगा। उसे आना ही पड़ेगा। दृढ़विश्वास परन्तु निराशा मिश्रित प्रलोभन—आशा। अजीत करीब छः बजे तक बाहर ही खड़ा रहा, चारु न दिखाई पड़ी; वह निराश हो गया सोचने लगा तो क्या चारु नहीं आवेगी। हो सकता है। माताजी ने तो नहीं रोक लिया, लेकिन वह क्यों रोकने लगी- जरूर कोई

"[illegible] रही है [illegible] । [illegible], [illegible] कहाँ हूँ [illegible] है । आशा में [illegible] न पड़ी । मैं तो [illegible] और [illegible] ! [illegible] है [illegible] ही निराश हो जाएगी । [illegible] तो [illegible] हो [illegible] गा [illegible], और मैं [illegible] को लेकर आऊँगा ।" अजीत [illegible] रहा था और [illegible] को [illegible] रहा था परन्तु इधर [illegible] को चैन नहीं [illegible] कभी इधर देखती तो कभी [illegible] । सोच-कर हार गई परन्तु [illegible] को शान्ति न मिली । [illegible] आई अजीत ने [illegible] को आते देख लिया । वह एक ओर छिप गया । कितना [illegible] प्रेमियों का—कितनी अठखेलियाँ भरी हैं ? दोनों के हाथों में आशा की [illegible] है और मस्तिष्क में भविष्य की कल्पना की ज्योति । दोनों उमंग में पागल से हो रहे हैं । अजीत के अधरों पर हँसी थी, परन्तु [illegible] गम्भीर, [illegible] निराशा की प्रतिमूर्ति बन [illegible] पड़ी, उसके मन में आया [illegible] कह दे कि नृत्य नहीं करेगी । वह [illegible], [illegible] अपनी श्रद्धांजलि चढ़ावे, [illegible] पर मंच पर खड़ी होगी, पैर तो अभी से काँप रहे [illegible] कर इन काँपते हुए पाँवों से नाच [illegible] । [illegible] सकती । उसने आकर हेड मिस्ट्रेस से [illegible]—"[illegible] सकूँगी ।"

"क्यों, क्या [illegible] ? देखो [illegible] देखने के लिए तुम्हारी माँ आई हैं । वह तुम्हें [illegible] जायँगी ।"

"यह सब तो ठीक है, परन्तु मेरे तो [illegible] में काँप रहे हैं ।"

"क्यों ?"

"न जाने क्यों यह मैं नहीं कह सकती ।"

"केवल शर्म और भय से तुम्हारे पैर काँप रहे हैं और कोई

करता था, फिर किस प्रकार अन्य स्त्रियों के सम्मुख अपना मुख खोलता।

चारु घुँघुरू पहिने रंगमंच से उतरी, उसका अंग-अंग शिथिल हो रहा था और साँस जोर से चल रही थी। उसके उतरते ही अजीत बाहर चला आया। उसको बाहर जाते देख चारु दौड़ी आई और अजीत से कहने लगी—"आपको मेरा नृत्य कैसा लगा?"

"मुझे तो विशेष बात न लगी। कलाकार के लिए उसमें कोई आकर्षण नहीं था। देहातियों को छोटी-छोटी लड़कियाँ इससे कहीं मनमोहक नाच लेती हैं। संभव है, तुम्हें ग्रामीण नृत्य देखने का कभी अवसर नहीं मिला।"

"तो फिर आप कुर्सी पर क्यों उछल रहे थे?"

"इसको यह समझना भूल है कि मैं प्रशंसा कर रहा था।"

"फिर आप लड़कियों में क्यों घुसकर बैठे थे?"

"तुम्हें देखने के लिए।"

"अजीत!"

"चारु!"

अजीत ने अपनी गर्दन फेरी, कोई दिखाई न दिया। वह था और उसकी प्रेयसि चारु। उसने चारु का कोमल हाथ अपने करों से उठाया और अधर तक ले गया।

"चारु! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।" चारु उसके आलिंगनपाश में बँधी थी।

"अजीत! तुम मेरे हृदय-धन हो।"

"और तुम मेरे हृदय की रानी।" चारु उसके बाहुपाश में थी वह छुड़ाने का प्रयत्न कर रही थी पर अजीत उसको कसते ही जा रहा था। इसी अवस्था में कुछ क्षण बीते। चारु बोली—"हटिये!

देव को आम में टाँगकर वह धीरे-धीरे पढ़ने लगा परन्तु दूसरे ही क्षण गलीचा झाड़ने की आवाज सुनी और उसका मन उपन्यास से हटकर उसी ओर जा लगी। वहाँ चारु थी। वह ऊपर बरामदे में अजीत के सम्मुख खाट बिछा रही थी और अजीत....उसका अजीत उसकी आँखों के सम्मुख था। अजीत ने चारु को देखा और हाथ उठाया। चारु ने भी हाथ उठाया। दोनों खुश थे। चारु ने अजीत को पहिचाना और अजीत ने चारु को। परन्तु अजीत मुग्ध था उसके हाव भाव भरे नृत्य पर जिसे अभी-अभी वह कुछ क्षण पहले देखकर आ रहा है। दो ओर कल्पना थी। आहों की ज्वाला उस क्षण दोनों के हृदय में से प्रज्वलित हो रही थी। चारो ओर शान्ति थी। हाँ, कहीं-कहीं गर्मी से ऊबकर बेचारे झिंगुर अपना सुर अलाप देते थे। लेकिन वह भी कुछ ही क्षणों के लिए। परन्तु पवन झोंका. आफ! कितना भयानक, उसमें मस्ती थी और भीनी-भीनी महक—दोनों हृदयों में हाहाकार पैदा कर रही थी। लू के सपाटे नहीं थे लेकिन वायु में इतनी कम्पन थी कि सारा शरीर हिल उठता था। अजीत अपने खाट पर लेट गया। उसे नींद कब आई यह वह खुद न समझ सका। परन्तु चारु जानती थी।

ही भविष्य था। लेकिन कल''''शायद उस क्षण किसी ने हम लोगों को देख लिया था। तो इससे क्या। लेकिन मैं तो अपनी राह से पीछे नहीं हट रही हूँ। खैर अभी अजीत को बुलाती हूं। सभी बातें अभी मालूम हो जायँगी। धीरे-धीरे समय जाने लगा। करीब साढ़े बारह बजे के समय उसने एक नौकर को बुलाया और उससे अजीत को बुला लाने को कहा। नौकर आया। उस समय अजीत शौचादि से निवृत होकर अपने कमरे में एक खाट पर पड़ा यही सोच रहा था कि मैं चारु को पा सकूँगा या नहीं। कल चारु ने अपना हृदय खोलकर मुझे दिखा दिया था। चारु को मैं उसी दिन समझ गया जब उसने मुझसे मेरा परिचय पूछा था। अभी यह यह सोच ही रहा था कि नौकर कमरे में आया। वह नौकर को अच्छी तरह पहिचानता था। नौकर को अपनी ओर आते देख उसने कहा—"क्यों भाई, कहाँ चले ?"

"अजीत भैया, बिटिया रानी बुला रही है।"

"तो क्या चारु शीला स्कूल नहीं गई?"

"कल जलसा होने की वजह से आज छुट्टी है।"

"ओः, समझा ! अच्छा चलो आता हूँ।" नौकर चला गया। अजीत सोच में पड़ गया। कुछ ही क्षण में न जाने क्या भाव उदय हुआ कि वह दौड़कर बाहर आया और नौकर को बुलाने लगा। नौकर लौटकर आया। वह बोला—"क्यों बुलाया अजीत भैया?"

"मुझे क्यों बुलाया है, तुम बता सकते हो ?"

"यह तो मुझे मालूम नहीं।"

'तुम्हें मालूम नहीं ! शायद फिर मैं न आ सकूँगा।"

"क्यों ?" अवाक् होकर नौकर ने कहा।

"यह जान कर तुम क्या करोगे। बस तुम इतना चारु से कह देना कि मैं नहीं आ सकता।" नौकर फिर कुछ कहने को मुँह खोला ही था कि अजीत फिर बोल उठा—"और कुछ नहीं, तुम जाकर इतना ही कह देना।" नौकर आगे पूछने की हिम्मत न

"फिर कौन जरूरी काम से जाना है ?"

अजीत कुछ बोल न सका। दीदी को वह नहीं बताना चाहता था कि इन तीन दिनों में वह चारु का हो गया और चारु उसकी। वह उसी के पास जा रहा है। वह खामोश एकटक शान्ति की ओर देख रहा था। उसकी आँखों में उस क्षण घृणा थी, ग्लानि थी और थी ईर्ष्या। वह कमरे की ओर लौट पड़ा और कमरे में आ पलंग पर धड़ाम से गिर पड़ा। काश ! शान्ति समझ सकती। मैं चारु से मिल सकता। वह जरूर शान्ति को समझाने से असमर्थ है परन्तु शान्ति इतनी उम्र पाकर भी न समझ पाई। आखिर अजीत जवान है, उसके लिए बन्धन कितना बुरा। बन्धन बच्चों के लिए है जिन्हें अपनत्व का ध्यान नहीं। अजीत इस तरह सोच ही रहा था कि किसी ने दरवाजा खटखटाया। अजीत ने समझा शायद शान्ति है। वह अनमने भाव से उठकर दरवाजे की कुंडी खोलने लगा। दरवाजा खोल अजीत लौट पड़ा और खाट पर सोने के लिए झुका। परन्तु झुकते ही उसने किसी की मृदुल वाणी सुनी। यह आवाज उसकी पहिचानी हुई थी। वह चौंक पड़ा और घूमकर देखा। चारु सामने खड़ी मुसकरा रही थी।

"कौन चारु ! तुम यहाँ क्योंकर ?"

चारु कुछ बोली नहीं और आगे बढ़ कुर्सी को थामकर खड़ी हो गई। वह फिर बोला—

"तो क्या तुम मुझसे रुष्ट हो गई हो ?"

"बहुत।" चारु ने कहा।

"नहीं चारु, यह बात नहीं। मैं तुम्हारे ही पास आने वाला था। पर.....।"

"पर क्या बोलते-बोलते रुक क्यों गये ?"

'तुम्हें किस तरह समझाऊँ चारु ! मेरे.....।" अजीत ने

"फिर कौन जरूरी काम से जाना है ?"

अजीत कुछ बोल न सका। दीदी को वह नहीं बताना चाहता था कि इन तीन दिनों में वह चारु का हो गया और चारु उसकी। वह उसी के पास जा रहा है। वह खामोश एकटक शान्ति की ओर देख रहा था। उसकी आँखों में उस क्षण घृणा थी, ग्लानि थी और थी ईर्ष्या। वह कमरे की ओर लौट पड़ा और कमरे में आ पलंग पर धड़ाम से गिर पड़ा। काश ! शान्ति समझ सकती। मैं चारु से मिल सकता। वह जरूर शान्ति को समझाने से असमर्थ है परन्तु शान्ति इतनी उम्र पाकर भी न समझ पाई। आखिर अजीत जवान है, उसके लिए बन्धन कितना बुरा। बन्धन बच्चों के लिए है जिन्हें अपनत्व का ध्यान नहीं। अजीत इस तरह सोच ही रहा था कि किसी ने दरवाजा खटखटाया। अजीत ने समझा शायद शान्ति है। वह अनमने भाव से उठकर दरवाजे की कुंडी खोलने लगा। दरवाजा खोल अजीत लौट पड़ा और खाट पर सोने के लिए झुका। परन्तु झुकते ही उसने किसी को मृदुल वाणी सुनी। यह आज उसको पहिचानी हुई थी। वह चौंक पड़ा और घूमकर देखा। चारु सामने खड़ी मुसकरा रही थी।

"कौन चारु ! तुम यहाँ क्योंकर ?"

चारु कुछ बोली नहीं और आगे बढ़ कुर्सी को थामकर खड़ी गई। वह फिर बोला—

"तो क्या तुम मुझसे रुष्ट हो गई हो ?"

"बहुत।" चारु ने कहा।

"नहीं चारु, यह बात नहीं। मैं तुम्हारे ही पास आने वाला था। पर.....।"

"पर क्या बोलते-बोलते रुक क्यों गये ?"

"तुम्हें किस तरह समझाऊँ चारु ! मेरे.....।" अजीत ने

ठिकाने पर आया। उसने कहा—"देखो मैं घर जा रही हूँ। आज कागजी का मेला है तुम आओगे तो साथ ही चलूँगी।"

"मैं जरूर आऊँगा।"

"देखो आओगे न!" आँखों ने कुछ कहा। अधरों पर हँसी थी। आह भरते हुए अजीत ने कहा—"हाँ।" आगे कुछ न कह सका। चारु चली गई। अजीत ने चैन की साँस ली। थोड़े समय पश्चात इन्द्रभूषण न जाने कहाँ से झूमते हुए आये। अजीत ने देखा शायद कहीं से नशा पीकर आये हैं। अजीत को इन्द्र पर बड़ा क्रोध आया, लेकिन क्रोध पीकर बोला—

"जीजाजी, कहाँ से आ रहे हैं।"

"जरा गाँव निकल गया था।"

"मैं आज जा रहा हूँ।"

"अरे भाई कहाँ?"

"इलाहाबाद।"

"क्यों?"

"आपके...।" आगे कुछ न बोला। इन्द्र समझ गया कि अजीत मेरे नशे पर क्रोध कर रहा है। वह मुसकराया। "देश हो या परदेश आपके लिए सभी बराबर। सभी स्थान पर अपनी उदारता प्रदर्शित किये बिना आपकी इच्छा ही नहीं भरती।"

अजीत चुप रहा। आगे बोलना ठीक नहीं समझा शायद इन्द्र को विश्वास न हो जाय कि मैं सचमुच ही चला जाऊँगा। मुझे अभी जाना है।

अजीत को अब अवकाश मिल गया। वह उठा और सूटकेस खोल फुलपेन्ट तथा कोट निकाला। बाल को सँवारा और बूट पहिन चल पड़ा अभी करीब चार बजा था। फाटक पर पहुँचते ही उसने भुलई को पुकारा। वह आया।

"बड़े मुश्किल से आये हैं माँ! भागे जा रहे थे वह तो मैं हाथ पकड़कर घसीट लाई।"

"चारु, तुम बड़ी शरीर हो! आओ बेटा, मेरे साथ आओ।"

अजीत कुछ न बोला और सीढ़ियाँ तै करने लगा। उसे हँसी आ रही थी। चारु कितनी चालाक है। मैं भागा जा रहा था। यह मुझे पकड़ कर....।

अजीत कमरे में पहुँचा। कमरे में एक ओर एक सफेद जाजिम बिछा हुआ था। एक ओर ताश के पत्ते बिखरे पड़े हुए थे। दूसरी ओर इस जाजिम पर एक नवयुवती, पोली परन्तु कुछ हलकी साड़ी पहने हुए बैठी हुई थी। घूँघट की वजह से सुन्दर मुख नहीं दिखाई देता था। अजीत ठिठका। चारु समझ गई। वह झट अजीत के समीप आई और कहने लगी—

"अजीत बाबू, यह मेरी भाभी है।" अजीत कुछ न बोला।

"हम लोगों को केवल एक ही 'पार्टनर' की कमी थी। क्यों भाभी अब तो हम लोग अच्छी तरह से कोट पीस खेल सकेंगे?"

"जी, क्या मतलब! मुझे ताश खेलना नहीं आता।"

"लेकिन शहर में रहते हैं न आप!" चारु ने व्यंग्यात्मक भाव से कहा।

अजीत चारु के शब्दों का उत्तर देता परन्तु वहाँ चारु की थीं। उसने केवल हँसकर ही बात टाल दी। चारु जाजिम बैठ गई।

"हाँ बाँटो भाभी, अब शुरू किया जाय।"

क्या अजीत ताश खेलने के लिए आया है? नहीं-नहीं, चारु से एकान्त में बैठकर बातें करने के लिए आया है। श्री जानती है फिर वह जानकर भी अनजान क्यों बन है। अभी-अभी वह मेरे घर आई थी। उसी ने कहा

"ज़रा ठहरिये, आप तो ऐसे भाग रहे हैं जैसे कोई चोर भाग रहा हो।"

अजीत को और भी क्रोध आ गया। यह अपमान वह कभी नहीं बरदाश्त कर सकता था। परन्तु माता की वजह से वह ठमक गया। चारु अपनी माता की ओर फिरी और कहने लगी—"माँ, आज कासगंज का मेला है। जाऊँ भला देख आऊँ।"

"मेला जायगी, अच्छा जा। अजीत को दिखला ला। यह हमारे गाँव में पहले-पहल आये हैं। यह भी देख आवें यहाँ का मेला कैसा होता है।"

लेकिन अजीत ने वहाँ भी जाने से इनकार कर दिया। चारु के अनुरोध से वह आया था, और माता के कहने से जाय। नहीं ये कभी नहीं हो सकता। वह आगे बढ़ा। चारु ने आगे बढ़कर रोका और कहा—"आप नहीं चलेंगे क्यों?"

'मुझे घर में काम है, दूसरे मैं ही अकेला था घर पर। कोई घर पर भी तो देखने वाला हो।"

"लेकिन आपने तो कसम खाई थी कि मैं ज़रूर चलूँगा। आप भी क्या हैं थोड़ी-सी बातों पर रूठ जाते हैं।"

"मैं रूठा किसी से नहीं हूँ। बात यह है कि मुझे उस समय यह नहीं मालूम था कि मुझे ही अकेले घर में रहना होगा।"

"नहीं, आपको चलना ही पड़ेगा। आप नहीं जायेंगे तो मैं भी नहीं जाऊँगी।"

"क्यों?"

"क्या और भी बताने की ज़रूरत पड़ेगी?"

"देखो आँसुओं की कोई ज़रूरत नहीं; मैं चलूँगा?"

"चलोगे न! तो मैं कपड़े पहिन आऊँ?"

"फौरन, दस मिनट के अन्दर!"

"बहुत जल्दी, अभी।" हँसती हुई चारुशीला दूसरे कमरे में दौड़ कर चली गई। कुछ ही क्षणों में वह कपड़े पहन कर आ-खड़ी हुई। अजीत बोलना ही चाहता था कि वह बोल उठी—"चलिये, भोला! जल्दी मोटर निकालो हम कासगंज चलेंगे।"

"अच्छा बिटिया रानी, अभी लाया।"

"देखो जल्दी, बहुत जल्दी!"

"चारु, आईने में मुँह देखा था?"

"किसका मुँह?"

"अपना।"

"क्यों?"

"आज बहुत सुन्दर लगती हो। लाल साड़ी और काला ब्लाउज तुम्हें बहुत फबता है। लेकिन थोड़े बा....।"

"बाल बिखरे हुए हैं यही न! बस रहने दीजिये तारीफ करना। मुझे सब मालूम है।" बात काट कर चारु ने कहा। अजीत हँस पड़ा। चारु भी हँस पड़ी। दोनों हँसते हुए फाटक पर आये। भोला मोटर लिये उन्हीं की राह देख रहा था।

"क्या लेना है बिटिया रानी?" भोला ने पूछा।

"बहुत कुछ लेना है भोला, पहले ले तो चलो।"

"अभी पहुँचा देता हूँ।" अजीत अभी तक चुप रहा। वह चारु की चंचलता को निरख रहा था और आनन्द ले रहा था उसके मधुर कोकिल कंठ और मृदुल भाषण का। चारुशीला बोली—

"आइये बैठिये, समय बीता जा रहा है।"

अजीत कुछ न बोला और मोटर पर आ बैठा। मोटर चल पड़ी। अजीत कुछ क्षणों के लिए दिशा ही भूल गया कि उसकी मोटर किस ओर जा रही है। उसने चारु से पूछा—"देखो, दिशा ही भूल गया।"

चारुशीला हँस पड़ी, उसने मजाक में कहा—"सूर्य को देख कर कल्पना कर लीजिये आप ही मालूम हो जायगा।"

"सच कहता हूँ मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ!"

"तो शायद ध्रुवतारा से ठीक-ठीक दिशा का ज्ञान हो जायगा।"

"देखो मजाक मुझे पसन्द नहीं।" अजीत ने गम्भीर होकर कहा।

"जिस ओर मोटर जा रही है वही उत्तर है।"

"तो इस तरह क्यों नहीं कहतीं, पहेली क्यों बुझा रही हो।"

'तुम्हारे जैसा मैंने चिड़चिड़े दिमाग का मनुष्य नहीं देखा और न देखूँगी।'

"देखो चारु, अब मैं तुम्हारी बातों में दिन-प्रतिदिन परिवर्तन ही पा रहा हूँ। उस दिन तुमने मुझे 'आप' कह कर पुकारा था और आज देख रहा हूं केवल 'तुम' छोड़ दूसरे शब्द तुम्हारे पास हैं ही नहीं। उस समय माता के सम्मुख तुमने मुझे कितना जलील किया।"

"अजीत, अनुभव की बातें करो।" चारु ने गम्भीर होकर कहा।

"क्या अनुभव?"

"मान लो तुम्हारे पहुँचने के साथ ही यदि मैं माँ से कह कि मैं मेला कासगंज जा रही हूँ तो क्या माँ हम लोगों को देतीं? कभी नहीं। जरूर उन्हें किसी बात का शक होता। देखो माँ ने खुद ही मुझे तुम्हें लेजाने को कहा है। लाठी नहीं टूटी, साँप भी मर गया।"

"सो तो ठीक है। लेकिन मुझे यह बात पसन्द नहीं।"

"यही कि मैं आपको 'तुम' कहने लगी हूँ न!"

"हाँ शायद।"

"तो क्या अब भी आप मेरे लिए मेहमान हैं?"

इस बार अजीत कुछ उत्तर न दे सका। केवल उसकी आँखों ने यह बतला दिया, मेहमान नहीं तुम्हारा प्रेमी। और चारु की आँखों ने 'इसलिये आप नहीं तुम और तुम्हारी प्रेमिका।'

अजीत ने अपना सिर झुका लिया। वह आगे कुछ न बोला। परन्तु ज्यादा समय तक वह कल्पना में न रह सका। चारु ने कंधे पर हाथ रक्खा।

"सच!" अजीत ने पूछा।

"चलिये हटिये।" चारु ने दूसरी ओर मुँह फेरते हुए कहा।

"देखो चारु, मेरी ओर देखो।"

"नहीं देखती आपकी ओर!"

"क्यों?" शब्द में कम्पन था। बोली रुँधे गले से बहुत प्रयास करने पर फूटकर निकली थी। परन्तु चारु ने तन्मयता भंग कर दी! वह हड़बड़ा कर कहने लगी—"अजीत, देखो कासगंज का मेला!"

"मेला! क्या बताऊँ...।"

"देखो भोला, मोटर ऐसे स्थान पर खड़ी करना ताकि हम लोग ठीक से घूम सकें।"

"अच्छा बिटिया रानी।"

मोटर एक स्थान पर जा रुकी। चारु उतरी। अजीत भी उतर पड़ा। मेला खूब लगा हुआ था। चारों ओर देहाती जूतों-से चलने की आवाज़ चर्र मर्र हो गूँज रही थी। चारु एक ओर खड़ी हो गई। अजीत भी वहाँ जा खड़ा हुआ।

"देखिये सँभलकर चलियेगा। यहाँ बहुत पहुँचे गिरहकट हैं।"

"तुम सँभलकर चलना, कहीं किसी की दीठ न लग जाय।"

चारु ने मुस्करा दिया। दोनों आगे बढ़े। चारु एक मिसाती की दुकान पर खड़ी हो गई। उसने वहाँ से अपने बेज़-चूँटे

काढ़ने का सामान मोल लिया। परन्तु अजीत ने अभी तक कुछ भी नहीं खरीदा था।

चारु और आगे बढ़ी। अजीत भी उसके पीछे चला। कुछ ही दूर पर वे फिर रुके। अजीत ने एक दुकान से चाकलेट मोल ली। चारु बोली—

"बस यही मोल लेने के लिए इतने साज-समाज से आये थे?"

अजीत ने थोड़ा मुस्करा दिया। चारु ने आगे बढ़कर कुछ कपड़े मोल लिये! फिर दोनों ने इधर-उधर खूब मेला देखा। करीब छः के समय वे मोटर के पास आये और यह तय हुआ कि अब घर चलना चाहिये। दोनों मोटर पर जा बैठे। रास्ते में फिर बातें शुरू हुईं। चारु ने धीरे से अजीत के जेब से चाकलेट निकाल लिया और एक टुकड़ा मुँह में रखकर कहने लगी—"आप भी शौक करते हैं?"

अजीत ने अपना जेब टटोला और मुस्करा कर कहने लगा—"नहीं और पूछ-पूछ।"

"लीजिये, चाकलेट बहुत बढ़िया है, कवल गाय के ही दूध का बना है।" इतना कह चारु ने एक टुकड़ा अजीत की ओर बढ़ा दिया।

अजीत ने हाथ बढ़ाया परन्तु दूसरे ही क्षण चारु ने झट मुँह में रख लिया। "यह बात है।" अजीत ने दूसरी ओर फेर लिया।

चारु चाकलेट को धीरे-धीरे जीभ के नीचे रस में घिसाने लगी थी। अजीत उसी तरह मुँह फेरकर बैठा था। उसने कि चारु ने चाकलेट का टिकिया एक ओर रख दिया है। झट उचककर उसे उठा लिया और कहा—

आगे कुछ न कह सकी। अजीत को भी दया आ गई। आखिर चारु उसी की है। चारु उससे कभी अलग नहीं हो सकती।

"नहीं मैं समझता हूँ कि वे वाक्य केवल तुम्हारे आवेश के थे, इसीलिए मैं उस समय कुछ नहीं बोला था। मैं जानता था तुम जरूर अपने कहे हुए पर एक दिन पश्चाताप करोगी।"

"मैंने तो केवल आपसे हँसी की थी और आप उसे सच समझ बैठे।" इतना कह चारु रोने लगी। उसकी आँखों में आँसू देख अजीत का हृदय भर आया। उसने कहा—

"यह क्या लड़कपन कर रही हो चारु!"

"आप मुझे हरदम रुलाया करते हैं। यह आप ही को अच्छा लगता होगा। मेरी आत्मा ही जानती है.....।"

"खैर यह तो होता ही रहता है।"

"फिर आज आवेंगे न?"

"शायद उस दिन की तरह आज फिर मेरा अपमान करो।"

"देखो ऐसी जली-कटी से मेरा दिल न जलाओ। आओगे न?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"मैं तुम्हारी भाभी से शरमाता हूँ।"

"क्यों! ओः समझी। वह दूसरे घर की है न इसलिए। ।र माँ से?"

"नहीं।"

"?"

तो जैसे तुम्हारी माँ वैसे ही मेरी माँ।"

आना जरूर!"

कुछ न बोला। चुपचाप खाट पर लेट गया। उसने ली। मानो उसे जीवन दान मिल गया हो। अब

उसे विश्वास हो गया कि चारु उसे सच्चे दिल से चाहने लगी है। कुछ देर बाद वह उठा और पूरी तरह से तैयार होकर चारु के बँगले की ओर चला। इस समय उसे प्रकृति बदली-सी दीख पड़ी। जो फूल पहले उसका परिहास-सा कर रहे थे वे ही अब उसे अपनी ओर आकर्षित करने लगे। जो बंगला उलटकर आसमान में जा लटका था फिर अपने स्थान पर स्थित हो गया था। अजीत को अपनी कल्पना पर हँसी आई। परन्तु ज्यादा समय तक वह उसी में न उलझ सका। चारु अपनी खिड़की के पास बैठी उसकी राह देख रही थी। उसने अजीत को आते देखा। झट कमरे से बाहर आई। अजीत ने उससे कहा—"तो क्या मेरा ही इन्तजार किया जा रहा था?"

"हाँ, मुझे डर लग रहा था कहीं आप न आवें।"

"लेकिन मैं तुम्हें वचन दे चुका था।"

"हाँ, लेकिन आप पुरुषों की बात कौन चलावे। कहकर वादे को टाल देना आप लोगों के बायें हाथ का खेल है।"

"तुम मानो या न मानो मैं तुम्हारे पास नहीं आया हूँ। मैं तो माताजी के पास आया हूँ, उन्हीं के साथ बैठकर आज ताश भी खेलूँगा।"

"चलिये! मैं रास्ता दिखादूं?"

"रहने दीजिये, तकलीफ न करें।" दोनों हँस पड़े। इनकी हँसी को सुनकर माताजी भी वहाँ आ पहुँचीं। अजीत को देखते ही बोल उठीं—

अरे बेटा तुम! मैं समझी थी कि शायद तुम अपने घर चले गये हो।"

"नहीं माताजी, अभी मैं यहीं रहूँगा।"

"कब तक?"

"अच्छा, तो मैं अभी आई।"

"तो मैं ताश बाटती हूं।"

भाभी कुछ न बोली और दूसरे कमरे में चली गई।

कुछ ही समय पश्चात् भाभी सभी काम-धन्धों से फुरसत पा ताश खेलने के लिए आ बैठी। आज कहीं किसी को जाना नहीं था, इसलिये ताश बड़ी तन्मयता के साथ होता रहा। करीब आठ के समय अजीत को अचानक घर की सुध आई। उस दिन केवल दोपहर से सन्ध्या ही तक गायब रहा था उस पर दीदी ने हजार जली-कटी सुनायी थी—

"देखो यह परदेश है। सुबह से गायब हुए तो अब आ रहे हो। जानते हो कि यह कितना भयानक देश है। घर को ऐसे ही छोड़कर चले जाते हो। देखो यहाँ रहना है तो घर पर ही रहना होगा, नहीं इलाहाबाद चले जाओ।" आज क्या कहेगी। जरूर फिर डाट-फटकार सहनी पड़ेगी। उस दिन कासगंज जाने की बात भी कही थी परन्तु दीदी ने एक न सुनी। आज तो बिलकुल ही बिगड़ खड़ी होगी। उसने उठकर एक जमुहाई ली और ताश खेलने से अनिच्छा प्रकट की, परन्तु चारु ने उसे ऐसा नहीं करने दिया। वह कहने लगी—"बैठिये बैठिये अभी आठ ही तो बजा है। थोड़े समय के लिए देर न हो जायगी।"

माता के अनुरोध पर अजीत को रुकना पड़ा। वह सोचने लगा अब जो होगा सो देखा जायगा। फिर ताश शुरू हुआ। सभी अपने-अपने पत्ते से उलझने और बाजी की सफलता दिखाने लगे। ताश खेलते-खेलते करीब दस बज गया। अब तो अजीत की दशा बिगड़ी। धीरे-धीरे उसका पेट भूख की कृपा से कुड़-कुड़ाने लगा। घर पर बहिन का डर तो पहले ही था अब खाली पेट ने उसे बिलकुल ही लाचार कर दिया। फिर एक बार

उसने अपनी लाचारी प्रगट की, परन्तु चारुशीला की माँ ने उसे रोका। लाचारी और मजबूरी दोनों ने अजीत को भर पेट खिलाया। उसे बैठना ही पड़ा। करीब साढ़े दस बजे खाना बन्द हुआ। चारु अन्दर गई। इस बार उसके हाथ में एक छोटा-सा थाल था। कुछ ही क्षणों में वह अजीत के पास आई। अजीत को मानो जान में जान आ गई। इच्छा तो थी परन्तु ऊपर से जतलाने के लिए अनिच्छा प्रकट की। परन्तु चारुशीला की माँ के विशेष आग्रह करने पर अजीत को खाना ही पड़ा। कुछ ही देर में वह सारा थाल साफ कर गया।

"और लाओ चारु! तुम तो पूछती भी नहीं हो।"

"क्या लाऊँ?"

"कुछ नहीं, पेट भर गया।"

इतना कह अजीत उठ पड़ा और माताजी से अभिवादन करते हुए कहा। "अब चलूँ माताजी!"

"हाँ, बेटा, काफी समय हो गया। चारु, जरा लैंप दिखा दो।"

चारु लैंप उठाकर सीढ़ी की ओर चली। आगे-आगे चारु और पीछे-पीछे अजीत चला आ रहा था। बरामदे में पहुँच कर चारु ने कहा—"जा रहे हो।"

'हाँ चारु।"

'लेकिन.....।"

अजीत कुछ समीप आ गया। आँखें मिल गईं। अजीत ने चारु को अंकपाश में कस लिया।

"कल आओगे न अजीत!"

"कोशिश करूँगा।"

नवाँ परिच्छेद

अजीत घर आया। दबे पाँव दीदी की खाट के पास पहुँचा। दीदी सो रही थी। उसने धीरे से दीदी के आँचल से ताली खोली और बिना किसी को सचेत किये ही घर में घुस गया। झट अपना सोने का सामान उठा आम के नीचे आ डटा। दीदी के आँचल में उसी तरह ताली बाँध वह अपनी खाट पर जा लेटा। खाट पर गिरते ही उसे नींद आ गई। सुबह जब सोकर उठा तो देखा उसकी दीदी सर के ही पास खड़ी है। मारे क्रोध के वह काँपी जा रही थी। उसके मुख से बोली नहीं निकलती थी। अजीत उठा। दीदी की यह हालत देख घबरा उठा। वह बोला नहीं और चुपचाप खाट उठाने लगा। जब खाट उठाकर चला तो शान्ति ने कहा—"अजीत, जाओ तैयारी करो। तुम्हें इलाबाद जाना होगा। रात-रात भर गायब रहते हो। माताजी कहेंगी मेरे लड़के को बर्बाद कर डाला।"

"मैं कहाँ गया था दीदी। यहीं तो था।"

शान्ति को और भी क्रोध ने घर दबाया—"अभी परसों खाना नहीं खाया था और कल निकल गये घूमने। कासगंज गये थे।"

"नहीं दीदी, सच कहता हूँ मैं यहीं था चारु के यहाँ।"

"वहाँ क्या करते थे?" शायद क्रोध कुछ कम हो गया था।

"ताश खेल रहा था।"

"इतनी रात तक?"

"हाँ दीदी, उन लोगों ने रोक लिया था।"

हो सकी। चलती बेला चारुशीला ने कहा था मुझे भूल मत जाना। अजीत ने उत्तर में केवल हाथ ही दिखा दिये थे।

गाड़ी में अजीत बैठ तो गया, परन्तु उसको चारु की याद ने घर दबाया। उसकी चारु अब उससे धीरे-धीरे दूर होती जा रही थी। रेलगाड़ी उसे प्रतीत होने लगी मानो उसे कोई उड़ाये लिये जा रहा है। संसार उसे एक फूस-फास की झोपड़ी की तरह लगने लगा। आग लगते ही जल कर राख। उसका जीवन उसे एक चलती फिरती छाया-सा प्रतीत हुआ।

गाड़ी कानपुर स्टेशन पर आ रुकी। यहाँ अजीत को गाड़ी बदलनी थी इसलिए बिस्तर लिए प्लेट-फार्म पर उतर गया। भूख बड़ी जोरों से लगी थी। उसने अपनी पाकेट से कुछ पैसे निकाले और पूड़ियाँ मोल लीं। परन्तु उसने जैसे ही कौर उठाया वैसे ही चारु की याद आ गई। खाना अरुचि कर लगा। उसने अपना हाथ जेब में डाला। उसमें शायद रूमाल रक्खा था। उसने उसे निकाला।

चारु ने अपने हाथों से उसमें काढ़ा था। मोटे अक्षरों में लिखा था—अजीत कुमार।

Forget me not

"Forget me not" नहीं मैं कभी नहीं भूल सकता। उसने उसी तरह पूड़ी उठाकर कुत्ते को दे दी। गाड़ी आई उस पर बैठ गया। वह बार-बार रूमाल को देखता। चारु ने अपना चित्र दिया है। मैं उसे कुछ न दे सका। इतना भी मुझसे न हो सका कि मैं उसे सान्त्वना ही दे जाता। पथ पर चल रहा हूँ देखूँ पिताजी क्या कहते हैं।

गाड़ी इलाहाबाद स्टेशन पर आ पहुँची। अजीत गाड़ी से उतरा। बिनय प्लेटफार्म पर टहल रहा था। उसने अजीत को देखा। वह

ग्यारहवाँ परिच्छेद

अजीत जब से इलाहाबाद आया है न जाने क्यों उसे यहाँ की कोई चीज अच्छी ही नहीं लगती। बंगला न जाने कैसा शून्य लगता है। कमरे की सजावट न जाने क्यों बुरा लगती है। आज दो दिन हुए, वह भरसक प्रयत्न करता है परन्तु किसी भी तरह उसका मन किसी ओर नहीं लगता। बंगले का बाग तथा फूलों की सजावट तो उसे और ही जलाये डाल रही है। उसे रह-रह कर पिता तथा बहिन पर क्रोध आ रहा था।

वह उसके समीप बैठकर मीठी मीठी बातें करता था, लेकिन आज वह बहुत दूर हो गई है। हर क्षण, हर घड़ी चारु ही की याद उसे आ रही थी। उसके कोमल अधर जिसका उसने पान किया था, शायद ही उसे अब ऐसा अवसर मिल सके। चारु का कोमल कंठ, उसके चंचलता भरे शब्द—शायद ही अजीत को अब ऐसा शुभ दिवस प्राप्त हो सके। वह अब चारु के साथ मोटर पर बैठकर कभी कामगंज नहीं जा सकता और न अब उस छोटे से बाग में उसके साथ फूल की कलियाँ ही चुन सकता है।

अजीत को निराशा ने आ घेरा। वह अपने कमरे में रूमाल को हाथों में ले कुर्सी पर बैठा एकटक उसी की ओर देख रहा था।

चारु उसके जीवन की सहिनी है। उसी के ऊपर वह अपना सब कुछ अर्पण कर चला आया है। परन्तु पिताजी से यह क्योंकर कहे। शायद पिताजी अस्वीकार करदें। इसी क्षण राधा ने उसके कमरे में पांव रक्खा। अजीत ने पूछा—"क्या है राधा?"

बारहवाँ परिच्छेद

मन के राजा,

"प्यारे अब तो सहा नहीं जाता। अजीत तुमने खूब धोखा दिया। भ्रमर को क्या चाहिये; पराग के पुजारी, मैं यह नहीं जानती थी कि तुम मुझे धोखा दोगे। अजीत अब मुझसे नहीं सहा जाता। क्षण-क्षण तुम्हारी याद मुझे घायल बना रही है। तुम्हारे बिना मुझे एक पल भी अच्छा नहीं लगता। मुझे सारा बँगला सूना-सूना-सा लगता है। जल्दी चले आओ। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकती।

अभागिन

चारुशीला

चारु, तुम मुझे एक क्षण शान्ति से न रहने दोगी। कोशिश कर रहा था कि कुछ दिन के लिए मैं तुम्हें भूल जाऊँ। परन्तु बैठे घाव पर तुमने वार किया। चारु मैं तुम्हारे बिना एक पल भी नहीं रह सकता पर क्या करूँ मेरे पास इतना अधिकार नहीं कि मैं तुम्हें अपना कहूँ।

पत्र को पढ़कर अजीत ने गहरी साँस ली। शायद यह ही शब्द उसके हृदय से निकले थे। उसकी आँखों से अश्रु-धारा बह निकली। सच वह चारु को प्रेम करता था। इतना ही नहीं वह चारु के बिना एक पल भी चैन से नहीं रह सकता। वह चारु से एक हफ्ते की मोहलत लेकर आया था। परन्तु उसकी भी अवधि

कह दूंगा तो यह मेरी इच्छा के अनुकूल मेरी शादी सरला के विपरीत चारु से करा न देंगे। यह तो केवल पिताजी से कही जा सकती है। वे यदि चाहें तो सब कुछ हो सकता है। लेकिन पिता जी का रुख कुछ उल्टा ही नजर आ रहा है। वे कब मेरी बातों को मानने लगे। इधर चारु के पत्र मुझे जलाये डाल रहे हैं। ईश्वर ही खैर करे मुझसे तो अब नहीं सहा जाता। दोन्तों की बातें घाव पर नमक का काम रही हैं। वे आते हैं और विरह में आग सुलगाते हैं। सभी विवाह के शुभ दिवस पर इठला रहे हैं। खैर, अपनी-अपनी कल्पना है कह लेने दो। मैं किसी को रोकूँगा भी नहीं। जीवन में सुख और दुःख दोनों ने जन्म लिया है। यदि मैं चाहूं कि हमेशा मुझे सुख ही सुख मिले तो यह भी गलत भावना है। फिर उस सुख का वह आनन्द ही कहाँ जो बिना परिश्रम ही मिल जाय। सुख का आनन्द दुःख के बाद है। वस्तु वही प्यारी होती है, जो कठिन तपस्या के पश्चात हासिल होती है।

सरला को ठुकराऊँगा यह तो मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है, परन्तु उसके विपरीत चारु को क्योंकर अपनाऊँगा यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। बात को टाल देना तो मिनटों का काम है। सरला के लिए तो कोई बहाना निकल ही आयगा। परन्तु चारु के लिए.....?

कुछ समझ में नहीं आता। तो क्या निराश होकर मुझे यहाँ तक मजबूर हो जाना होगा कि मैं चारु को लेकर भागूँ। पिताजी मुझे सहारा नहीं देंगे, मुझे अलग ही अपना घर बनाना होगा। उस क्षण क्या मैं अपनाव को सँभाल सकूँगा हाँ, कुछ दिन जरूर मैं अपना घर सँभाल लूँगा परन्तु फिर जब मैं दाने-दाने को मुहताज हो जाऊँगा तो उस समय मेरी कौन मदद करेगा। कोई नहीं। मैं [illegible] की तरह इधर-उधर [illegible]

घुमूँगा। तब किस तरह से चारु को खिलाऊँगा। अभी तो मेरी यह दशा है कि मैं पिता के ही बल पर शान-शौकत दिखा रहा हूँ। न एक पैसे कमाता हूँ और न.....। फिर उस क्षण में क्या कर लूँगा। मजबूरन फिर मुझे पिता की बात माननी होगी। उस समय क्या मैं चारु को अलग कर सकूँगा ?

फिर क्या करूँ। लेकिन मैं सरला से शादी नहीं करूँगा। मैं वकील साहब के भावों को अच्छी तरह जान चुका हूँ, वे भी तुले हुए हैं। खैर, मुझे उनकी भी परवाह नहीं और माधो.....।

तेरहवाँ परिच्छेद

"मैं सब कुछ सुन चुका विनय! तुम मेरी बातों को झूठ समझ रहे हो! खैर तुम्हारी इच्छा; मैं यह नहीं कहता कि तुम सरला से प्रेम न करो। करो और जी भर कर करो। परन्तु अन्त में तुम्हें खुद ही मालूम हो जायगा कि सरला यथार्थ में प्रेम करने योग्य नहीं है। मैं पहले भी कहता था और अब भी कहता हूँ जिस युवती की एक नजर नहीं, भविष्य में उसका एक प्रेम नहीं हो सकता। खोज करने पर हजार उसके मतवाले निकल सकते हैं। पंकिल तभी तक स्वच्छ है जब तक उसके पाँव कीचड़ में नहीं गये। कीचड़ में पड़ते ही उसके पाँव में सौ-सौ मन कीचड़ लग सकता है। इसको तुम मानते हो कि नहीं एक अवगुण को छिपाने के लिए मनुष्य हजार अवगुण करता है।"

"तो क्या प्रेम पाप है?"

"यह मैं नहीं कह सकता। परन्तु इतना अवश्य ही कहूँगा कि तुम्हारा और सरला का प्रेम पाप है।"

"वह किस तरह? क्या मैं अपने स्वार्थ के लिए प्रेम कर रहा हूँ और सरला को अपनाना चाहता हूँ?"

"क्या बात कहते हो विनय, शायद तुम्हारी बुद्धि इस क्षण लोप हो गई है। स्वार्थ मानव का मुख्य लक्ष्य है। तुम कहते हो मैं स्वार्थ के लिए प्रेम नहीं कर रहा हूँ। मैं कहता हूँ यदि इसमें स्वार्थ न होता तो इतनी कठिनता कभी न आती।"

सारा जीवन नष्ट कर आप अपना भविष्य बना चली गई।"

"हाँ भाई, जरूर सुशीला ने उसे धोखा दिया था। स्वप्न में भी हम लोगों को ऐसा विश्वास नहीं था।"

"बस उसी तरह अपनी दशा भी समझो।"

"खैर भाई तुम्हारी बातों पर विश्वास कर यह मैं मान ही लेता हूँ कि सरला सुशीला की ही बहन हो सकती है, परन्तु अभी मुझे कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिला कि मैं उसे बुरा कहूँ।"

"वह भी दिन दूर नहीं, एक न एक दिन अवश्य ही आँख के सामने आकर रहेगा। फिर मैं पूछूँगा कि अब क्या कल्पना करते हो भाई।"

"उड़ती-उड़ती खबरें मैंने भी सुनी हैं कि सरला की शादी होने वाली है।"

"कहाँ यह भी पता लगा है?" हँसते हुए रञ्जन ने कहा।

"ऐसे ही बनारस की हवा उड़ी है। लेकिन कहाँ तक सत्य है यह मैं नहीं कह सकता, क्योंकि मुझे विश्वास नहीं होता। सरला मेरी है वह कभी अपनी इच्छा के विरुद्ध काम नहीं कर सकती। वह कभी शादी नहीं करेगी।"

"दूसरे की अमानत को अपनी अमानत कहते हो विनय! भूल जाओ वह केवल बहार थी जिसमें तुमने अपनी आशा को पाल रखा था, अबकी कोशिश करने से संग्राम का कारण बनेगी। अभिलाषाओं को यहीं तक रक्खो। फिर सरला कोई ऐसी सुन्दरी भी तो नहीं है जिस पर आपकी प्रवृत्ति इतनी झुक गई है। आपको तो सरला से कहीं सुन्दर हजार लड़कियाँ मिल सकती हैं। सरला मिले या चूल्हे भाड़ में जाय। अगर इस तरह तुम अपनी मजबूरी जाहिर करोगे तो जरूर सरला को इस बातका घमंड हो जायगा।"

क्यों नहीं जिस तरह वह मुझसे बातें कर सकती है क्या दूसरे से नहीं कर सकती! कर सकती है और शायद किया भी हो, क्या विश्वास, परन्तु बिना प्रत्यक्ष प्रमाण के मैं कभी नहीं मानूँगा।

विनय बाबू अपने कमरे में इसी तरह बैठे कल्पना कर रहे थे कि एक औरत ने आकर उन्हें एक लिफाफा दिया। उस पर लिखे शब्दों को पढ़कर विनय का कलेजा उछल गया। वह सरला की महरिन को भली भाँति पहिचानता था। पत्र खोलने के विपरीत उसने महरिन से पूछा—

"जमुना, यह तुम्हें क्योंकर मालूम हुआ कि मैं ही वह युवक हूँ?"

"इसमें पहिचाने की क्या बात, बिटिया रानी की बातों से साफ मालूम हो गया कि वह तुम्हीं को चाहती है।"

"परन्तु उसने ऐसा क्यों किया यह मेरी समझ में नहीं आता। क्या वह खुद नहीं आ सकती थी और तुम्हें किसने बताया कि मैं ही विनय बाबू हूँ?"

"परिस्थितियों ने।" कुछ क्रोध में आकर जमुना ने कहा।

"अच्छा जमुना, यह तो बताओ सरला इस समय क्या कर रही है?"

"रो-रोकर घर भर रही है, और क्या करेगी, [illegible] में तो यही लिखा है। आप [illegible] इतनी सुखकर [illegible]

इस समय जो बीत रही है वही जानती है।"

"आखिर कुछ तो पता लगे क्या मामला है?"

"सरला की शादी वकील साहब ठीक कर रहे हैं परन्तु सरला नहीं चाहती की उसकी शादी किसी दूसरे से हो। वह तुम्हें चाहती है और इसलिए उसने चिट्ठी लिख भेजी है। मैं नहीं जानती कि उसने इसमें क्या लिखा है परन्तु चलते वक्त उसने कहा था कि अगर मेरा यह काम न हुआ तो जमुना, तुम अवश्य ही मेरा शव पाओगी।"

"शादी होने वाली है, कब और किससे?"

"नाम तो मैं नहीं जानती पर इतना जरूर सुना है कि वह इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा में बैठने वाला है।"

"कहाँ का रहने वाला है, क्या तुम बता सकती हो?"

"नहीं यह मुझे मालूम नहीं।"

"जमुना, तुम जाओ किसी में इतनी हिम्मत भी नहीं। सरला को लाऊँगा मैं। उससे कह दो वह घबराये नहीं। मैं सब ठीक कर लूँगा। देखता हूं कौन दूल्हा बनकर सरला को ले जाता है।"

"बाबूजी, चिट्ठी देंगे।"।

"नहीं।"

"फिर क्या कहूँगा जाकर?"

"अभी मैंने कहा नहीं कि वह घबराये नहीं, मैं सभी समझ लूँगा।"

जमुना चली गई। उसके जाने के बाद ही विनय अपनी कुर्सी पर आ लेटा, चिट्ठी को, खोला और पढ़ना आरम्भ किया। मजमून को पढ़लेने के बाद उसने एक चैन की साँस ली और यह कहते हुए करवट बदलने लगा—धन्य है रञ्जन, अभी तो तुमने मेरे सभी कियेकराये पर पानी फेर दिया था। सरला

केवल मुझे चाहती है। तुमने मुझे न जाने कैसी उलटी-सीधी बातें सुना कर इस कदर सरला की ओर से उभाड़ दिया था। अच्छा बदला लेने की ठानी थी। खैर अब कभी तुम जैसे पर विश्वास ही न करूँगा। यह बात तो अब साफ प्रगट हो गई कि सरला की शादी होने वाली है और जल्दी। क्योंकि उसके मजमून से यही बात मालूम होती है। उसमें मुझे आज शाम को मिलने को लिखा है, मैं जरूर जाऊँगा और पता लगाऊँगा कि आखिर क्या मामला है। आज ही सारी बातों का निर्णय कर जो अच्छा समझा जाय, किया जाय। लेकिन अभी तो पाँच बजा है अभी से जाकर क्या होगा। आठ बज जायँ तब चलूँगा। लोग यह भी न सोचेंगे और न कह ही सकेंगे कि इन्तजार में आया था। उस समय चलूँगा तो सब यही समझेंगे कि सिर्फ पार्क में टहलने आया है। इतना कह उसने चिट्ठी को एक बार फिर दोहराया और आराम कुर्सी पर जा बैठा।

"अच्छा यह। वे तो अभी बाग में गये हैं।"

"समझ गई। ननकू, देखो यदि बाग में हों तो अभी बुला लाओ।"

"मैं अभी बुलाकर लाता हूँ।"

"हाँ देखो जल्दी करो कहीं इधर-उधर न चले गए हों।"

"ऐसा न होगा जरूर वे बाग में होंगे।"

"अच्छा देखो बातें पीछे करना। ननकू, एक बात और सुने जाओ।"

"क्या?"

"यह न कहना कि मैंने बुलाया है।"

"फिर क्या कहूँगा?"

बेवकूफी न करो ननकू! इतने बड़े हो गये समझ नहीं आई।"

ननकू समझ गया। बातें तो वह पहले से जानता था और वह भी जानता था कि माया कैसी औरत है। ननकू चला गया। अजीत बाग ही में बैठा था। ननकू अजीत को देख आगे बढ़ गया।

"अरे अजीत बाबू, आप यहाँ बैठे हैं! चलिये।"

"कौन ननकू! कहाँ, क्या खबर लाए हो?"

"ऐसी बस पाँचों उँगलियाँ घी में हैं।"

"पाँचों उँगलियाँ घी में हैं क्या मतलब। ननकू पहेली न बुझाओ।"

"मैं पहेली बुझा रहा हूँ! खैर ऐसा ही सही।"

"देखो लम्बी चौड़ी भूमिका हो चुकी।"

"अगर आप तैयार हो जायँ तो एक बात कहूँ।"

"कुछ मालूम भी तो हो कि बस योंही पाँव फैला दिये जायँ।"

"सरला बिटिया सिनेमा को तैयार है। कोई घर में ले जाने

वाला नहीं, यदि आप इतना कह दें कि मैं भी सिनेमा जा रहा हूँ तो सारा काम बन जायगा। बोलिये; आपका क्या विचार है?"

"मैं क्या कहूँ, जो तुम्हारी इच्छा हो करो। पर एक बात है?"

"अब देर न करिये मैं सभी ठीक कर लूँगा।"

"यदि माताजी ने कुछ कहा तो?"

"वह कुछ न कहेंगी। सरला तैयार है। बस आप ही की जरूरत है।"

"तो चलो मैं कह दूंगा कि मैं सिनेमा जा रहा हूँ।"

"बस बात पक्की हो गई।"

"बस अब मैं जरूर ही माधो का बदला ले सकूँगा।" अजीत ने मन ही मन कहा। सरला तैयार है और वह क्यों न चाहेगी। उसको तो मैं पहले ही जानता था। चलो किसी भी तरह हृदय को शान्ति मिले।

इतना कह वह ननकू के साथ आगे बढ़ा। माया तो यह चाहती ही थी। अजीत को आते देख उसने कहा—"बेटी, जाओ धानी रंग की साड़ी पहन लो और जाओ सिनेमा देख आओ। जी बहल जायगा। उठो देर मत करो समय हो रहा है। छः बज चुके हैं।"

"नहीं माँ, मैं सिनेमा नहीं जाऊँगी।"

"क्यों?"

"मेरी तबियत अच्छी नहीं है।"

"उठो भी सब अच्छा हो जायगा। जाओ देखो बाहर कमरे में अजीत तुम्हारा इन्तजार कर रहा है।"

"अजीत।" सरला ने चौंक कर कहा। माँ कुछ समझ न सकी; उसने यही समझा सरला शरमा रही है। उसने कहा—"हाँ, अजीत।"

"क्या मैं पूछ सकता हूँ कि उस युवक का नाम क्या?"

"यह आप पूछकर क्या करेंगे।"

"बिना परिचय के मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता।"

"मेरी कलाई तो छोड़ दीजिये।"

"ऐसा कभी नहीं हो सकता। जब तक तुम यह नहीं बता-ओगी तब तक मैं तुम्हारी कलाई क्या तुम्हें भी अलग नहीं कर सकता।"

"यदि आप पूछते ही हैं तो सुन लीजिये उनका नाम है बिनयकुमार!"

"विनयकुमार!" चौंककर अजीत ने कहा। कलाई उसके हाथ से छूट गई। वह एकटक सरला की ओर देखने लगा।

अनुज-बधू भगिनी सुत नारी। सुन शठ यह कन्या समचारी॥
इनहिं कुदृष्टि बिलोकै जोही। ताहि हन्यै कछु पाप न होई॥

"सच बोलो मुझे तुम्हारी बातें झूठी लग रही हैं।"

"नहीं अजीत बाबू, मैं सच कह रही हूँ।"

"ओफ मैं पापी हूं चाँडाल हूँ, नारकी कुत्ता! ऐसे को तो मर जाना चाहिये। विनय की प्रेमिका। ओह:! अपराध—भयंकर अपराध! अब मैं क्या करूँ। मैंने मुँह दिखाने के लायक काम नहीं किया। मैं पापी हूं जो छोटे भाई की प्रेमिका पर आँख गड़ाई। यदि मालूम होता तो ऐसा करने के पहले मैं अपना खून कर लिये होता। आज मुझे मालूम हुआ कि मैं कितने गहरे में गिर चुका हूँ। मेरे सामने सारी दुनियाँ अंधकारमय है। अब क्या करूँ। सरला, यह तुमने पहले क्यों नहीं बताया, वर ऐसा करने के पहले मैं दोनों आँखें फोड़ लिए होता। अब काला मुँह किसी को दिखाने लायक नहीं। मैं विनय से क कहूँगा। चारु, तुम्हें भुला देने का फल आज मुझे मिल गय

"घर में तो नहीं हैं, मालूम नहीं कहाँ गई हैं।"

"तुम्हें पता नहीं!" विनय को आश्चर्य हुआ।

"हाँ बाबूजी, कभी-कभी सरला बेटी बिना कुछ बताये ही चली जाती हैं।"

"मुझे लिख भेजा था कि मैं आज मिलूँगी, लेकिन उनका पता नहीं।"

"वकील साहब भी अकेले ही गये हैं। फिर सरला कहाँ और किसके साथ गई।"

विनय और जमुना इस तरह की बातें कर रहे थे कि उधर से ननकू आ निकला। ननकू को देखकर जमुना ने पूछा—"ननकू, तुम दिन-रात यहीं रहते हो तुम्हें तो जरूर ही मालूम होगा कि वकील साहब कहाँ गए हैं?"

"वकील साहब का तो पता नहीं। हाँ, बिटिया रानी का पता जरूर मालूम है।"

"वह कहाँ गई हैं?"

"सिनेमा देखने।"

"किसके साथ?"

"अपने होने वाले दामाद के साथ।"

"दामाद के साथ! कौन दामाद?" जमुना ने कहा।

"जिनके साथ बिटिया की शादी होने वाली है।"

"अच्छा समझ गई।" एक गहरी साँस लेते हुए जमुना ने कहा।

ननकू चला गया। उसने इन दोनों के इस तरह खड़े रहने की कोई परवाह न की।

"जमुना, मैं सारी बात समझ गया। अब तुम मुझे किसी भी तरह बेवकूफ नहीं बना सकती हो।"

"यह आप क्या कह रहे हैं विनय बाबू!"

"जो कुछ मैं कह रहा हूँ ठीक ही कह रहा हूँ। सरला जरूर ही उस शादी से खुश है।"

"वह कैसे विनय बाबू?"

"क्या यह भी बताने की बात है। सरला यदि न चाहती तो कभी होने वाले पति के साथ सिनेमा न जाती। इससे साफ मालूम होता है कि वह खुद ही इस बात में दिलचस्पी ले रही है और मुझे केवल बेवकूफ बनाया जा रहा है। मैं समझ गया।"

"यह बात नहीं हो सकती विनय बाबू।"

"खैर, कुछ भी हो। अब मैं कहे देता हूँ कि खबरदार, मेरे पास सरला की कोई खबर मत लाना। मैं नहीं चाहता कि किसी के शुभ कार्य में हस्तक्षेप करूँ।"

"ऐसा क्यों बाबूजी?"

"मैंने तुम्हारी बात पर विश्वास कर बड़ी गलती की। मुझे पहले ही मालूम था कि कालेज की लड़कियों का प्रेम कैसा होता है, वे किस तरह का प्रेम चाहती हैं और उनके प्रेम में आदर्शता होती है या नहीं। वे केवल ऊपरी हृदय से प्रेम करना जानती हैं। वे इतना जानती हैं, वर्तमान में भविष्य के लिए जो बीज बोया जा रहा है कभी अंकुरित होगा ही नहीं, और यदि हुआ भी तो पल्लवित नहीं हो सकता इसलिये जो फल निकल सके निकाल ही लेने में हिचकती हैं। वे स्वप्न में भी कल्पना नहीं करतीं कि इसका परिणाम क्या होगा।" विनय ने आह भरते हुए कहा।

"मैंने क्या सोचा था और क्या हो गया। मैं सरला को

अपनी समझता था पर यहाँ कुछ और ही गुल खिल रहा है। महरिन बताने से इंकार कर रही है, मगर मैं जानता हूँ, सरला शायद इस घमंड में भूल बैठी है कि अब तो शादी होने वाली है विनय की क्या जरूरत। परन्तु उसे यह बात मालूम नहीं कि बनारस के लोग जितने उद्दण्ड होते हैं उतने और कहीं के नहीं। बाहर से देखने में तो वे इतने सज्जन होते हैं, परन्तु हृदय में कितनी कटुता होती है शायद इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उस दिन सरला का पत्र आया था, उसमें साफ लिखा था कि वह केवल मुझे ही अपना आराध्य देवता मानती है और मेरे प्रेम की पूजा भी करती है। परन्तु स्त्रियों का हृदय चंचल होता है। हर क्षण, हर पल उनमें नये-नये परिवर्तन होते रहते हैं। कल सरला मेरी थी, और आज किसी दूसरे की है। ठीक भी तो है, मानव अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए हजार चेष्टाएँ करता है। यदि सरला ने ऐसा किया तो कोई बुरा नहीं। मैं उसके भावी का हृदय से समर्थन करने को तैयार हूं। उसने अपना भविष्य बना लिया तो मेरा भी कर्त्तव्य है कि मैं भी अपने भविष्य पर विचार करूँ।"

"बाबूजी, सरला हर तरह से आपके योग्य है।" जमुना ने कहा।

"और यदि मैं यह कहूं कि सरला व्यभिचारिणी है तब ?"

"सरला व्यभिचारिणी !"

"हाँ व्यभिचारिणी, जिसने इस विश्व में प्रेम का मूल्य नहीं जाना उसके लिए यदि ऐसे कठोर शब्द प्रयोग किये जायँ तो कोई हानि नहीं। उसके लिये यही उपयुक्त है।"

"नहीं बाबूजी, यह आपकी गलत भावना है। आप यह शब्द सरला के लिए कभी प्रयोग नहीं कर सकते। मैंने उसकी दशा देखी

है, वह केवल आपके सिवा और किसी को अपना समझती ही नहीं। इस समय आप आवेश में न जाने कहाँ के ऊटपटाँग शब्द उस बेचारी के लिए प्रयोग कर रहे हैं, पर वह वास्तव में ऐसी नहीं है। और यदि यह बात मान भी ली जाय कि वह व्यभिचारिणी है तो आपके पास मुझे भेजने की क्या जरूरत थी। सरला यदि आपके प्रेम में मुग्ध न होती तो कभी आपसे आँखें न मिलाती। फिर उसकी अधीरता से यह साफ प्रकट हो रहा था कि वह अपनी शादी से उदासीन है।"

"तो बात यह प्रकट हो गई कि सरला की शादी होनेवाली है।"

"हाँ, जहाँ तक मेरा ख्याल है मँगनी पक्की हो चुकी है।"

"और बनारसी साड़ी के साथ ही साथ कुछ गहने भी आ चुके हैं।"

"यह मुझे मालूम नहीं।"

"और क्या मालूम नहीं! कुछ और भी सफेद झूँठ बोलने की अभिलाषा है। जमुना, इस समय तुम चली जाओ। मैं नहीं चाहता कि मेरे मुँह से कुछ अप-शब्द निकले।"

"लेकिन बाबूजी, मैं अन्त में यही कहूँगी कि सरला सुन्दर और निर्मल है: हर तरह से आपके योग्य है।"

"जमुना, जबान को बन्द कर लो!"

जमुना ने विनय की ओर देखा। उसका सारा शरीर गुस्से से काँप रहा था। जमुना ने सोचा, इस समय इनसे बातें करना अच्छा नहीं। वरन क्या पता मुझे ही कुछ कह दें। आगे कुछ न कह कर चुपचाप चली गई। विनय जमुना की ओर एकटक देखता रहा। आँखों से ओझल होने पर उसने एक गाली सोची और "नागिन" शब्द उसके मुँह से निकल गया। वह भी टहल पड़ा।

मस्तिष्क में आँधी, आँखों के सम्मुख अंधकार और हृदय में कलाना का बदला हुआ तूफान लेकर लौट पड़ा। उसके लिए संसार भीषण प्रतीत हुआ।

जीवन की सारी आशाएँ खाक में मिल चुकी थीं। जिस माला को वह अपनी सफलता या बड़ी सफलता दूर होती मालूम हुई। जिस माला जैसी से वह सुख की आशा कर रहा था उसी से अब केवल काँटे ही काँटे दृष्टिगोचर होने लगे। विनय ने एक गहरी साँस ली और सोचा—माला के लिए मैं संसार को त्यागने के लिए तैयार हो गया था। कल दिन मैंने क्या सोचा था और आज क्या हो गया।

सोलहवाँ परिच्छेद

सरला को बँगले वापस पहुँचाकर अजीत अपने घर आया। उसको अब घर में रहना पसन्द नहीं। उसने ऐसा कार्य किया था कि उसका मरना ही बेहतर है। घर पहुँचते ही देखा कि घर का वातावरण बिलकुल ही उलट चुका है। पिता एक ओर सिर लटकाए बैठे हैं तो माता दूसरी ओर। अभी तक गृहदीप नहीं जला था। अजीत को आते देख बाबू रघुवीरप्रसाद उठ खड़े हुए। परन्तु आज वह उनकी परवाह न कर साइकिल उठा अन्दर ले चला। उन्होंने पुकारा—

"अजीत!"

"हाँ।"

"साइकिल अभी रखने की कोई जरूरत नहीं। पहिले यहाँ आओ मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ।"

उनकी नजरों से साफ मालूम हो रहा था कि कोई घटना से उलझ रहे थे। अजीत कुछ न बोला और साइकिल को दीवाल से टिकाकर पिता के पास आ खड़ा हुआ।

"कहाँ से आ रहे हो?"

"पिताजी, सिनेमा देखने चला गया था।"

"किसके साथ?"

"अकेला।"

"[illegible]"

[illegible]

"क्या सभी बातें ?"

"यही कि मेरी शादी सरला से होगी।"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"वह तुम्हारी तरह नहीं है। वह तुमसे कहीं अच्छा लड़का है।"

"पिताजी, मैं सरला से शादी नहीं कर सकता। जीते जी मैं चारुशीला को अपने से अलग नहीं देख सकता।"

"तो तुम जैसे बेटे को मेरे घर में कहीं स्थान नहीं। तुम्हारे रहने से हमें केवल बदनामी ही मिलेगी। इसलिए मैं तुम्हें स्वतंत्र कर रहा हूँ, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो चले जाओ।

"अच्छा पिताजी, मैं जा रहा हूँ। मेरी आपसे केवल यह अन्तिम प्रार्थना है कि चलती बेला आशीर्वाद दीजिये और विनय का भविष्य बनाने की चेष्टा करें।"

'जाओ बेटा वही काम करो जिससे तुम्हारा हित हो। तुम्हारी छाया मैं विनय पर नहीं पड़ने दूँगा। तुम नीच हो, कुशलनाशी हो, तुम्हारे ही जैसे पुत्र से घर की लाज जाती है। जाओ, आँखों के सामने से ओझल हो जाओ।"

अजीत कुछ न बोला और उठकर बाहर चला आया। एक तो सरला और विनय की याद, दूसरे पिता की फटकार, उसपर चारु के विरहगान ने उसे पागल बना दिया था। बिना कुछ सोचे ही वह स्टेशन पर जा पहुँचा। मेल जाने को तैयार खड़ी थी बस उसी पर बैठ गया। गाड़ी कुछ ही मिनटों में छूटने वाली थी अजीत को यह तक कुछ नहीं मालूम था कि वह क्या कर रहा है, कहाँ बैठा है और कहाँ जा रहा है। उसके सामने कभी सरला की आकृति अट्टहास करती दिखाई पड़ती, कभी चारुशीला का निराश

कुछ ही मिनटों में दोनों का अच्छा संघर्ष हुआ। किसी तरह गिरते पड़ते बाबू रघुवीरप्रसाद घटनास्थल पर पहुँचे। दोनों तुफानों की दुर्दशा देख उनका हृदय हिल उठा। चारों ओर लाशें ही लाशें दिखाई पड़ रही थीं। किसी का हाथ कटा अलग पड़ा था तो किसी का पाँव अलग और किसी का तो सिर धड़ से अलग दिखाई पड़ रहा था। मेल का इन्जन तो जमीन में छः फुट अन्दर धँस गया था। चारों ओर से कराहने की आवाज आ रही थी। पूरा श्मशान का दृश्य था। कोई किसी को देखने सुनने वाला नहीं। सभी अपनी-अपनी राह देख रहे थे कि कब हमारी बारी आती है। सभी डिब्बे में लोग अपना जीवन समाप्त करते दिखाई पड़ रहे थे। बाबू रघुवीरप्रसाद ने देखा। उनका हृदय काँप उठा! वे ज्यादा समय तक यह दृश्य न देख सके। वे उलटे पाँव लौट पड़े। पुलिस दरोगा आदि सभी घटनास्थल पर पहुँचे। विनय और सरला को भी मालूम हुआ तो वे भी यह कौतुक देखने के लिये वहाँ आये। विनय अकेला ही साइकिल से पहुँचा था। वह ज्योंहीं घटनास्थल पर पहुँचा उसे कुछ कराहने की आवाज सुनाई पड़ी। ऐसे तो कराहने की आवाज चारों ओर से आ रही थी परन्तु यह आवाज पहिचानी हुई थी। वह उसी ओर बढ़ गया।

सतरहवाँ परिच्छेद

विनय तुम कहाँ हो ! मैं अपने पाप का प्रायश्चित करना चाहता हूँ। मैंने भूल की थी। वह भूल की, जो कभी नहीं मिट सकती है। मैं मरने के पहले तुमसे क्षमा माँग लेना चाहता हूं। विनय ! विनय तुम कहाँ हो. मेरे पास आओ ! तुम मुझे घर ले चलना चाहते हो मैं घर नहीं जाऊँगा। मैंने हमेशा के लिए घर त्याग दिया। विनय बोलो ! तुम नहीं बोलते... कहाँ जा रहे हो यहाँ आओ! मुझे अभी मत ल चलो...मैं अपने पापों की क्षमा चाहता हूँ। विनय !"

"विनय ने घबराकर देखा पहले तो उसको आँखों को विश्वास नहीं हुआ. परन्तु अन्त में मुख को देखते ही वह पहचान गया कि यह उसका भाई है। उसकी आँखों में आँसू आ गये। अजात चुप हो गया था विनय बोल उठा—भैया ! भैया तुम चुप क्यों हो गये ?

परन्तु किसी तरह की आवाज नहीं चारों ओर से कराहने के स्वर मानो उसके कामों का समर्थन कर रहे थे वह फिर बोला—

"अजात भैया, अभी आप क्या कर रहे थे अब चुप क्यों हो गये ?"

वह फिर भी न बोला। विनय ने हिलाकर कहा अजात अजात फिर चिल्ला उठा—"विनय, तुम कहाँ हो बोलो तुम मुझे क्षमा कर दोगे ? मैं पापी हूँ, पवित्रा ने भी यही कहा

कि मेरे घर में तुम्हारे लिए स्थान नहीं मैं जा रहा हूँ। मेरे लिए संसार में स्थान नहीं, मैं जा रहा हूँ...। परन्तु मुझे क्षमा कर देना होगा !"

"भैया, आप यह क्या कह रहे हैं। आपका विनय आपके पास खड़ा है। आप किस बात की क्षमा चाहते हैं ?"

"हट जाओ तुम यम के दूत हो ! मैं अभी नहीं जा सकता। मुझे अभी संसार में बहुत से काम करना है।"

"भैया, मैं ही विनय हूँ।"

"हटो मेरे विनय को बुलाओ। मैं उससे क्षमा मागूँगा वह मुझे जरूर क्षमा कर देगा।"

इतने में सरला भी वहाँ आ पहुँची। विनय को देखते ही सरला उसी ओर बढ़ गई। घायल को ओर देखा वह चौंक पड़ी। अजीत के सिर में चोट आई थी। उसके माथे से रुधिर की धारा बह रही थी और भी कई स्थानों पर चोट आई थी। सरला बोली—

"विनय बाबू, यही हैं मेरे भावी पति। अच्छा हुआ भगवान् जो करता है, अच्छा ही करता है। अपने किये का फल पा गये।"

"सरला, चुप हो जाओ ! जानती हो यह मेरे कौन हैं ?"

"आपके...! मैं समझी नहीं।"

"मुझे सब मालूम है मेरे सामने से हट जाओ सरला !"

"विनय, तुम अभी तक नहीं आये !" अजीत ने कराहते हुए कहा।

"मैं तुम्हारे पास ही तो खड़ा हूँ भैया !"

"नहीं, तुम नहीं, मेरे विनय को बुलाओ..."

"क्या देखती हो, हट जाओ मेरी आँखों के सामने से ! तुम्हारे ही कारण आज मेरा भाई मुझे नहीं पहचान रहा है।

तुम्हीं ने उनकी आँखों पर वह अन्धकार का परदा रक्खा कि वह हमेशा के लिए एक पहेली बनने जा रहे हैं। तुम्हारे ही कारण आज इतनी जानें गईं, तुम मौत की तरह भयानक हो और जो मौत की तरह भयानक है उससे प्यार नहीं किया जा सकता। तुम्हारे कर्म मुझ से छिपे नहीं। तुमने जो कुछ भी किया मैं आज तक छिपाये रहा। लेकिन आज वे नहीं छिप सकते। तुम अपने को समझती हो कि मैं बड़ी सुन्दर हूं लेकिन यह क्षणिक है जिस पर तुम गर्व कर रही हो। तुम्हारी सुन्दरता कभी की तुम्हारे काले कारनामे द्वारा छीन ली गई। हट जाओ मेरे सामने से तुम्हारा मुँह देखना पाप है!"

"आप यह क्या कह रहे हैं विनय बाबू?"

"खबरदार, यदि मेरा नाम लिया तो! तुम व्यभिचारिणी हो।"

"आपने मुझे यहाँ तक समझा।"

"और कुछ कह दूं?"

"आप सब कुछ कह सकते हैं।"

इतने में एम्बुलेन्स कार वहाँ आ गई। उसी में अजीत को रखा अस्पताल ले गये। विनय घर चला आया। उसने आकर सारी बातें माँ से कहीं। बाबू रघुवीरप्रसाद गिरफ्तार कर लिये गये। घर का सर्वनाश हो चुका था।

अठारहवाँ परिच्छेद

आज उस घटना को घटे करीब एक वर्ष हो गया। अजीत पहले से स्वस्थ है। लेकिन पट्टियाँ उसी तरह बँधी हुई हैं। संध्या समय वह अस्पताल के बाग में टहलने के लिए आ जाता है। उस दिन वह बाग में टहल रहा था कि उसकी दृष्टि एक युवती पर पड़ी जो पास ही बैठी थी। उसके भी अंग-प्रत्यंग पर पट्टी बँधी हुई थी। अजीत को वह शक्ल पहचानी हुई मालूम हुई। वह आगे बढ़ा। पास पहुँचते ही वह युवती चिल्ला उठी—"अजीत बाबू!"

"चारुशीला!"

दोनों एक दूसरे के गले से लिपट गये।

"तुम यहाँ क्योंकर पहुँची चारु?"

"भाग्य ने यहाँ ला पटका था। परन्तु अब मैं बहुत खुशहूँ।

और आपकी यह दशा क्योंकर हुई?"

"मैं तुम्हारे पास जा रहा था।"

"और मैं भी आपके पास आ रही थी।"

"तब तो बीच में संघर्ष हो गया।"

चारु ने हँस दिया। अजीत को भी हँसी आ गई।

"आज कितनी खुशी का दिन है।"

"हाँ चारु ! परन्तु मुझे अभी [illegible] नहीं । मैंने अपने जीवन में वह काम किया है जिससे मैं [illegible] ही उदासीन बना रहूँगा ।"

"ऐसा क्यों ?"

"चारु, जीवन में एक ऐसी घटना घट गई है कि उसे बिना सफल बनाये मेरे मन को शान्ति नहीं ।"

"वह क्या ?"

"मैंने अनजाने में एक युवती की इज्जत लेना चाहा था । परन्तु लाज दोनों की रह गई । बाद को मालूम हुआ कि वह विनय की प्रेमिका है ।"

"विनय कौन ?"

"मेरा छोटा भाई ।"

"ओफ ! खैर मैं ठीक कर लूँगी आप न घबराय ।"

"हाँ चारु, यदि इतना कर दो तो मुझे शान्ति मिल जाय ।"

"चलिये, घर चलें बहुत दिन अस्पताल की हवा खाते रहे ।"

"चलो चलें ।" इतना कह दोनों अस्ताल से बाहर हो घर की ओर चल पड़े । रास्ते में अभी आ रहे थे कि सामने से माधो और विनय आते हुए दिखाई पड़े । अजीत ने माधो को पहिचान लिया । वह बोला—

"अरे माधो, तुम यहाँ कैसे ?"

"आ गया बेटा, माधो तो तुम्हारा हर तरह से दास है मुझे सारी बातें मालूम हो गईं । हम अस्पताल ही आ रहे थे —अच्छा हुआ तुम रास्ते ही में मिल गये ।"

"भैया, यह कौन है ? विनय ने पूछा ।

"तुम्हारी भाभी।"

"भाभी!"

"हाँ विनय, मैं ही तुम्हारी भाभी हूँ।"

"मैं बहुत खुश हूँ भैया!"

"तुम खुश हो! मुझे भी सभी बातें मालूम हो गई हैं।"

"क्या भाभी?"

"घर चलो, फिर बताऊँगी।"

❀ ❀ ❀

"विनय, जिस सरला को तुम नीच समझते हो वह नीच नहीं, तुम्हारे योग्य है।"

"भाभी, यह क्या कह रही हो, मैं कुछ समझ नहीं रहा हूँ। आपसे यह किसने कहा कि मैं सरला को चाहता हूं?"

"मुझ से सरला ही ने कहा है। मैंने उसकी दशा देखी है। बेचारी दिन-रात रोती है और तुम्हें तनिक भी दया नहीं आती।"

"भाभी, आप क्या जानो, वह इन बातों में कुशल है। उसी के कारण मेरे भैया की यह दशा हुई। मैं कभी उसको अपनी अर्धाङ्गिनी नहीं बना सकता।"

"यह तुम्हारी भूल है। विनय, यदि तुम्हें विश्वास न हो तो मैं तुम्हें उसकी दशा दिखा सकती हूँ।"

"क्या आपको सरला जैसी और लड़कियाँ नहीं मिल सकतीं?"

"लेकिन विनय, प्रेम एक बड़ी ही भयानक वस्तु है। अभी तक उन्माद में आकर ऐसी बातें कह रहे हो परन्तु जिस दिन तुम्हें यह बात मालूम होगी कि सरला निर्दोष है तो तुम खुद ही पश्चाताप करोगे।"

उन्नीसवाँ परिच्छेद

"वकील साहब आप विश्वास मानें, सरला की शादी विनय ही से होगी।"

"लेकिन विनय बाबू तो तैयार नहीं। सरला की दशा देखो सूखकर काँटा हो रही है और विनय बाबू उस पर कलंक लगा रहे हैं।"

"यह केवल आपकी गलती से हो रहा है। आप यदि चाहते तो सब कुछ हो जाता। आपने सरला को विनय के साथ घूमने से रोका। आपकी आखें नहीं थीं, आपने क्या वकील की जब एक पुरुष को न पहिचान सके। आप उसी समय समझ गये थे कि इन दोनों में प्रेम हो चुका है। शादी यदि सुन्दर होगी तो इन्ही दोनों की।"

"मैं अपनी भूल को खुद ही मान रहा हूँ। पर क्या करूँ!"

"आप तैयारी करें यह शादी मैं करा दूंगा।"

"वह किस तरह?"

"आप इसकी परवाह न करें।"

"लेकिन आप हैं कौन?"

"मैं अजीत बाबू का नौकर हूँ।"

"आपका नाम?"

"मेरा नाम माधो है।"

"तुम कौन हो ?"

"मैं एक कैदी हूँ ?"

"यहाँ क्यों आये हो ।"

"बरात की शोभा देखने ।"

"देख चुके ?"

"हाँ ।"

"तो अब बाहर जाओ ।"

"अजीत, यह तुम किससे कह रहे हो ?" उसने परिचित स्वर में डपटकर कहा ।"

"कौन पिताजी !"

"हाँ बेटा ।"

"ऐसा कहकर बाबू रघुवीरप्रसाद बेटे के गले से लिपट गये। विनय ने सुना तो वह भी दौड़ा-दौड़ा आया और पिता के गले से लिपट गया। दोनों से गले मिलने के बाद बाबू रघुवीर प्रसाद ने उच्च स्वर में कहा—"भाइयो, आज मैं आप लोगों को एक बात बतला देना चाहता हूँ कि दुनियाँ बदल रही है। दुनियाँ में रोज नये-नये परिवर्तन हो रहे हैं। आँखें खोलो और देखो हम कितने नीचे गिरे हुए हैं। चारों ओर सभी जातियाँ उन्नति कर रही हैं, केवल हम लोग अपना-सा मुह लिये एक दूसरे का मुँह ताक रहे हैं। यह केवल हम लोगों की कमजोरी और अज्ञानता है, हम अब पुराने सभ्यता के नहीं हो सकते। अब वह दूर की बात रहा। आज उसी कारण मुझे यह दिन देखना पड़ा। मेरे दोनों पुत्र हाथ से बेहाथ होने वाले थे। मैं उनका न समझ सका। मनुष्य गिरकर ही ऊपर उठता है।

अब भी समय है आँख खोलो देखो चारों ओर किस कदर त्राहि-त्राहि मचा हुआ है। हमारी अन्ध परम्परा के कारण हमारी

आदर्श पुस्तक-मंदिर के नये प्रकाशन

हिन्दी संसार के लिए नया उपहार

(मौलिक सामाजिक उपन्यास)

संन्यासिनी २॥) लेखक—ठा० जगदेवसिंह

विकल विश्व २॥) लेखक—विष्णुदेव तिवारी

यह बदलती दुनिया २॥) लेखक—गोपीनाथ योगेश्व

बाल-साहित्य

विचित्र शिक्षाप्रद कहानियों से भरी बच्चों को

लुभाने वाली

नई पुस्तकें

गदहेराम विलायत को ॥)

लेखक—विष्णुदेव तिवारी

१ भूत से भेंट ।=) २ भालू की दुलहिन

३ खरहे का व्याह ।=)

४ रानी तितली ।=)

५ बच्चों के खेल ।=) ६ जादू का मह

७ लाल परी ।=) ८ नया जादूग

हिन्दी की किसी भी पुस्तक के खरीदने के पहले ह

आदर्श पुस्तक-मन्दिर, चौक इलाहा

से पत्र-व्यव